इसलिए इन दोनों विद्याओं ने प्रसन्न होकर आपस का बैर भाव छोड़कर इन करपात्री जी का वरण कर लिया था ॥ १५ ॥

यथा परिजहारासौ निबन्धेऽस्मिन् पुरातने-
तथा दिङ्मात्रमेतस्मिन् लेखे प्रकटयाम्यहम् ॥ १६ ॥

इस पुराने 'समन्वय साम्राज्य संरक्षण' निबन्ध में जिस प्रकार इन दोनों विद्याओं के विरोध का परिहार किया गया है, मैं उसका संक्षेप यहाँ दिखाता हूँ ॥ १६ ॥

पूर्वं या कथिता विद्या परा सा ज्ञानमुच्यते-
कर्मोपास्त्यपरा विद्या कथिता वेदगादिभिः ॥ १७ ॥

ब्रह्मज्ञान का उपदेश देने वाली उपनिषत् परा विद्या है और कर्म तथा उपासना का उपदेश देने वाली १४ या १८ प्रकार की अपरा विद्या है ॥ १७ ॥

उपासना तु कर्मैव मानसं सर्वसम्मतम्-
देवतोद्देश्यकं दानं हविषः कर्म कायिकम् ॥ १८ ॥

एकाग्र मन से देवताओं के ध्यान को उपासना कहते हैं, यह मानसिक कर्म है। देवताओं के उद्देश्य से अग्नि में आहुति देना शारीरिक कर्म है ॥ १८ ॥

कर्मत्वस्याविशेषेण कर्मोपास्त्योः समुच्चयः-
सह सम्भवतीत्येवं न विरोधस्तयोर्मनाक् ॥ १९ ॥

कर्म और उपासना दोनों ही शारीरिक और मानसिक कर्म हैं, इसलिए इनमें आपस में विरोध का लेश भी नहीं है। इनका सहसमुच्चय = साथ २ रहना हो सकता है ॥ १९ ॥

यद्यप्यस्त्येनयोर्नैवं ज्ञानेन सह सम्भवः-
तथापि सम्भवत्येव क्रमशस्तु समुच्चयः ॥ २० ॥

यद्यपि कर्म और उपासना का परमात्मविज्ञान के साथ सहसमुच्चय नहीं हो सकता, किन्तु क्रमसमुच्चय तो हो ही सकता है ॥ २० ॥

न कर्मोपासने शक्ते सह स्थातुं कदाचन-
अक्रियेणाप्यसङ्गेन ज्ञानेन परमात्मनः ॥ २१ ॥

अक्रिय और असङ्ग ब्रह्मज्ञान के साथ कर्म और उपासना दोनों ही नहीं रह सकतीं ॥ २१ ॥

ज्ञानाग्नौ प्रज्वलत्येव क्रियाकारकगह्वरो-
व्यवहारः समस्तोऽपि भस्मसाद्भवति क्षणात् ॥ २२ ॥

ज्ञान की अग्नि के प्रज्वलित होते ही क्रियाओं और कारकों से घिरा हुआ सभी व्यवहार भस्म हो जाता है ॥ २२ ॥

सम्बन्धोऽप्रतिबद्धश्चेत् दाह्यदाहकयोर्भवेत्-
दाह्यं न दह्यते कस्मात् निर्विघ्ने सति दाहके ॥ २३ ॥

दाह्य और दाहक के सम्बन्ध में यदि कोई प्रतिबन्ध न हो तो दाह्य का दाह कैसे रुक सकता है ॥ २३ ॥

यज्ञदानादिकं कर्म यदन्तःशुद्धिकारणम्-
शुद्धेऽन्तःकरणे सम्यक् ज्ञानं तिष्ठत्यचञ्चलम् ॥ २४ ॥

यज्ञ-दानादि शारीरिक और उपासना मानसिक यह सभी कर्म अन्तःकरण की शुद्धि के कारण हैं, शुद्ध अन्तःकरण में ही ज्ञान स्थिर रहता है ॥ २४ ॥

क्रमेणानेन कर्मापि कारणं ज्ञानजन्मनः-
ज्ञानेनापि तयोस्तस्मादस्ति क्रमसमुच्चयः ॥ २५ ॥

इस क्रम से कर्म भी ज्ञान की उत्पत्ति का कारण है, इसलिये ज्ञान के साथ भी कर्म और उपासना का क्रमसमुच्चय हो सकता है ॥ २५ ॥

नै वातो युवयोर्भेद इत्यादिशति कोविदे-
करपात्र महाराजे द्वे विद्ये सम्प्रसेवतुः ॥ २६ ॥

इस प्रकार शास्त्र वचनों में प्राप्त हुये विरोधों का परिहार करके समन्वय साम्राज्य के संरक्षक श्री करपात्री जी महाराज के मुखारविन्द से यह सुनकर कि 'हमारा आपस में कोई विरोध नहीं है' दोनों विद्याएँ प्रसन्न होकर श्री करपात्री जी का वरण करने को प्रस्तुत हुयीं ॥ २६ ॥

'उत त्व' इति मंत्रेण सामर्थ्ये प्रतिपादिते-
सम्प्रसादमनुप्राप्योभे विद्ये योग मीयतुः ॥ २७ ॥

'उत त्वः' इस मन्त्र में यह बताया गया है कि कुछ लोग देखते-सुनते हुये भी विद्या का रहस्य नहीं प्राप्त कर सकते। जिन पर यह प्रसन्न होती है उनके आगे विद्या का रहस्य इस प्रकार प्रकट होता है—जैसे प्रियतमा पत्नी का सर्वस्व अपने पति पर निछावर हो जाता है। इस अर्थ के अनुसार ही दोनों विद्याएँ आपस में मिलकर श्री करपात्री जी के जिह्वाग्र पर नृत्य करने लगीं ॥ २७ ॥

समन्वयस्य साम्राज्यं रक्षितुं प्रथमा कृतिः-
'करपात्र' महाराजस्येयं समुपदर्शिता ॥ २८ ॥

सम्भवतः श्री करपात्री जी की यह प्रथम रचना है, इसमें समन्वय का साम्राज्य सुरक्षित है, इसका संक्षेप यहाँ दिखाया गया है ॥ २८ ॥

'ईशु' त्रिंशत्तमे वर्षे-तत्समीपस्थितेऽथवा ।
करपात्र महाराजमुखादेवोद्‌बभौ कृतिः ॥ २९ ॥

सन् १९३० के आसपास श्री करपात्री जी महाराज के मुख से यह 'समन्वय साम्राज्य संरक्षण' निबन्ध प्रकट हुआ था ॥ २९ ॥

'वेदार्थ पारिजाताख्यो यो निबन्धोऽधुनातनः ।
सर्वातिशायी बोद्धव्यः सम्राजो धर्मपद्धतेः ॥ ३० ॥

सन् १९७९ में प्रकाशित हुआ यह वेदार्थ पारिजात ग्रंथ सर्वोत्कृष्ट है। धर्मसम्राट् श्री करपात्री जी ने इसमें दोनों विद्याओं के सभी रहस्य खोलकर रख दिये हैं ॥ ३० ॥

दयानन्दादिभिर्येयं दूषिता वेदसद्‌गवी-
करपात्र महाराजैः सोद्‌धृता पापकर्दमात् ॥ ३१ ॥

दयानन्द-वेबर आदि विद्वानों द्वारा दूषित की गयी वेदवाणी का श्री करपात्री जी महाराज ने इस प्रकार उद्धार किया है—जैसे कीचड़ में फंसी हुयी गाय को उसमें से निकाल कर किसी ने बचा लिया हो ॥ ३१ ॥

बिभेत्यल्पश्रुताद्वेदो मामयं प्रहरेदिति-
प्राचीनोक्तिः स्फुटं ब्रूते वेदार्थानर्थकारणम् ॥ ३२ ॥

वेदाङ्गों का और इतिहास-पुराण का जिसको अल्प ज्ञान है, वह वेदार्थ नहीं करता—अपितु वेदों पर कलम कुल्हाड़ा चलाने बैठता है ॥ ३२ ॥

श्रूयते पण्डितं मन्यो विशुद्धानन्द नामकः
कश्चिन्महाशयः प्रष्ठः पारिजातस्य खण्डने ॥ ३३ ॥

सुनने में आया है कि कोई विशुद्धानन्द मिश्र महाशय आर्य समाज के आँसू पौंछने के लिये पारिजात के खण्डन में प्रवृत्त हुये हैं ॥ ६३ ॥

बभीत्यादिभिरश्लीलैरपशब्दैरपि क्षिपन्-
यथा धूलिभिरादित्यं करपात्रं जिगीषति ॥ ३४ ॥

उन्होंने सूर्य पर धूल उलीचने के समान करपात्री जी को अनेकों गालियाँ दी हैं और शास्त्रार्थ के लिये भी ललकारा है। अपने आपको शेर भी कहा है ॥ ३४ ॥

पौरस्त्यैर्दाक्षिणात्यैः सकलबुधवरैर्यस्य कीर्तेः पताका-
पाश्चात्यैरुत्तरस्थैर्दिशि विदिशि धृता सर्वलोकोर्ध्व भागे ।
वेदार्थः पारिजाते श्रुतिभिरभिमतो दर्शितो येन साक्षात्-
पञ्चास्यं जेतुमेनं कथमिव यतते 'मिश्र' संज्ञः शृगालः ॥ ३५ ॥
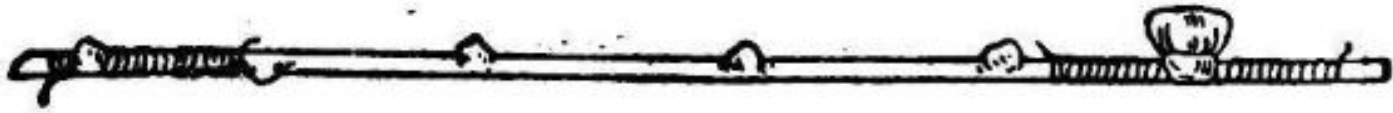
पूर्व-पश्चिम-दक्षिण और उत्तर दिशा के सभी विद्वानों ने जिनकी कीर्तिपताका को चारों ओर सबसे ऊपर उठाया है, जिन्होंने अपने पारिजात में वेदाङ्गों के और इतिहास-पुराण के अनुकूल वेदों का अर्थ किया है, उन्हें (सिंह सदृश स्वामी जी को) जीतने की हिम्मत रखने वाले मिश्र जी शृगाल ही सिद्ध होकर रहेंगे ॥ ३५ ॥

वेदार्थकल्पद्रुम संज्ञके स्वेग्रंथेऽकरोदेष बहून् प्रलापान्-
तत् खण्डनं कर्तुमभिप्रवृत्ताः श्री शङ्कराचार्य महानुभावाः ॥ ३५ ॥

इन्होंने 'वेदार्थकल्पद्रुम' नाम के अपने ग्रंथ में बहुत बकवाद की है। सुना है कि श्रीजगन्नाथपुरी के शंकराचार्य इनके ग्रंथ का खण्डन लिख रहे हैं ॥ ३६ ॥

तैः श्री जगन्नाथपुरी प्रतिष्ठैः-साकं यदि स्थातुमभीप्सितं ते।
शास्त्रार्थमञ्चेऽवतराशुर्ताह-पिस्पर्धिषां पश्य हतां स्वकीयाम् ॥ ३७ ॥

यदि इनसे शास्त्रार्थ करने की आपकी इच्छा है तो उतरो मैदान में और शीघ्र ही अपनी हैंकड़ी को मिट्टी में मिली हुई देखो ॥ ३७ ॥

परमानन्दसमुद्रोल्लास निवासंकपूर्णिमाज्योत्स्ने ॥
श्रीमत्करपात्रचरणसरसीरुह पादुके वन्दे ॥ ३८ ॥

श्री करपात्री जी के चरण कमलों की पादुकाओं को हम प्रणाम करते हैं—जो परमानन्द समुद्र में बाढ़ लाने वाली पूर्णिमा की चांदनी हैं ॥ ३८ ॥

संसृतिसागरनिपतल्लोक समुद्धार कारणी भूते ॥
श्रीमत्करपात्रचरण सरसीरुह पादुके वन्दे ॥ ३९ ॥

संसार सागर में डूबते उतराते प्राणियों का उद्धार करने वाली श्री करपात्री जी के चरण-कमलों की पादुकाओं में हमारी वन्दना ॥ ३९ ॥

श्रीमत्करपात्रचरण सरसीरुह पादुके वन्दे ॥ ४० ॥
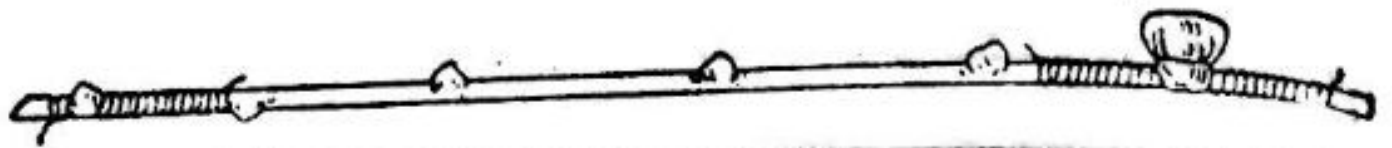
श्रीहरिः

गुरुवर के सान्निध्य में

श्री १००८ स्वामी श्री विपिनचन्द्रानन्द सरस्वती जी महाराज (जज स्वामी)
आनन्दवृन्दावन, मोतीझील, वृन्दावन (मथुरा)

श्रुति का आदेश है कि 'तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत्समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठं'
(मुण्डक २-२-१२)
श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरु के प्रति उपासन्न हो।

अतः मैं अपनी हाईकोर्ट जजी का काल १९७७ में समाप्त करके मई १९८१ में अनन्त श्री विभूषित धर्म सम्राट गुरुवर करपात्री जी महाराज की शरण हुआ और उनसे मैंने विधिवत संन्यास की दीक्षा ली। यद्यपि वे उन दिनों अस्वस्थ थे फिर भी कृपा करके उन्होंने दीक्षा प्रदान की। तत्पश्चात चातुर्मास्य में उनसे पर्याप्त शिक्षा प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उन्होंने एक बार कहा था— माता-पिता-गुरु से उपदेश और आशीर्वाद दोनों ही प्राप्त होना चाहिये। रामचरितमानस में माँ सुमित्रा ने लक्ष्मण जी को अप्रमत्त रहकर मातृ-पितृ तुल्य भगवान श्री सीता-राम की सेवा का जहाँ उपदेश दिया, वहाँ उनके श्री चरण कमलों में अगाध प्रीति का शुभाशीर्वाद दिया। सचमुच में श्री गुरुदेव की अनुकम्पा से ही मुझे उनसे दीक्षा, शिक्षा और शुभाशीर्वाद तीनों ही प्राप्त करने का जहाँ सौभाग्य प्राप्त हुआ वहाँ उनके अनुपम अनन्त गुणों के दर्शनों का सुयोग भी सधा।

पूज्यपाद गुरुवर से मेरा प्रथम परिचय व सम्बन्ध देहली के यज्ञ में हुआ। उनकी अलौकिक प्रतिभा और चमत्कृति का अमिट प्रभाव पड़ा। राशन पर कन्ट्रोल, विविध प्रकार के असहयोग आदि विघ्न-बाधाओं के रहते भी जिस दिव्य रीति से वह विशाल यज्ञ सम्पन्न हुआ, वह सचमुच में महाराज की अद्भुत धर्मनिष्ठा और भगवन्निष्ठा का आश्चर्यजनक प्रभाव ही था। तदनन्तर कई बार दर्शन एवं सत्संग का अवसर प्राप्त हुआ।

भाष्यकार भगवान श्री शंकराचार्य ने उपदेश साहस्री में गुरु लक्षण इस प्रकार व्यक्त किये हैं—

आचार्यश्चोहापोहग्रहणधारणशमदमदयानुग्रहादिसम्पन्नो लब्धागमो दृष्टादृष्ट भोगेष्वनासक्तस्त्यक्त सर्व कर्म साधनो ब्रह्मविद् ब्रह्मणि स्थितोऽभिन्नवृत्तो दंभदर्पकुहकशाठ्यमायामात्सर्यानृताहंकारममत्वादिदोष विवर्जितः केवलं परानुग्रह प्रयोजनो विद्योपयोगार्थी।

शिष्य के द्वारा न पूछे जाने पर भी अपनी ओर से उत्तम युक्तियों के द्वारा समझाने में जो कुशल हो, शिष्यगत मिथ्याज्ञान निराकरण में समर्थ हों तथा ऊहापोह समर्थ हों वे आचार्य हैं। ग्रहण, धारण, शम, दम, दया, अनुग्रह और अमानित्वादि सम्पन्न हों वे आचार्य होते हैं। (विहित बोधसामर्थ्य
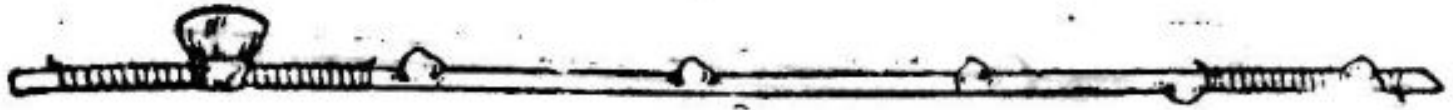
का ग्रहण कहते हैं। श्रुत अर्थ के अविस्मरण को धारण कहते हैं। प्रतिषिद्ध विषयों से अन्तःकरण का उपरम शम कहा जाता है। प्रतिषिद्ध विषयों से ही बाह्य करण के उपरम को दम कहते हैं। दुःखी प्राणियों के दुःख दूर करने की भावना दया है। तदनन्तर दुःख निवारण के लिये यत्न अनुग्रह है।) जो लब्धागम हों अर्थात प्रामाणिक आचार्य से उपदेश प्राप्त हों और ऐहिक—आमुष्मिक भोग से अनासक्त हों ब्रह्मवित् अर्थात महावाक्यार्थ भिज्ञ हों, ब्राह्मी स्थिति सम्पन्न ब्रह्मनिष्ठ हों अभिन्नवृत्त हों अर्थात अपरित्यक्त सदाचार और शौचाचार हो, दम्भ, दर्प, कुहक, शाठ्य, माया, मात्सर्य, अनृत, अहंकार, ममत्वादि दोष विवर्जित हों। (अर्थात दंभ=धर्मध्वजित्व, जिनमें न हो; कुहक=परवञ्चन, जिनमें न हो; दर्प=धनादिनिमित्त मद, जिनमें न हो; शाठ्य=नैष्ठुर्य, जिनमें न हो; माया= बाहर जैसे न हो वैसा प्रकाशन, जिनमें न हो; मात्सर्य=गुणों में दोष स्थापन से जो मुक्त हों; अनृत= असत्य वचन, न बोलने वाले जो हों।) केवल परोपकाररूप प्रयोजन वाले एवं अपनी विद्या का उपयोग करने की भावना वाले जो हों, उन्हें आचार्य कहते हैं।

उक्त प्रत्येक गुण आचार्य श्री में प्रचुर मात्रा में विद्यमान थे। यही कारण था कि जिज्ञासु उनके सम्पर्क में आकृष्ट होकर आते और प्रभावित होकर उनके सान्निध्य से कृतार्थ होते। महाराज श्री मूर्तिमान धर्म, मूर्तिमान ज्ञान, मूर्तिमती विद्या, उपासना और करुणा थे।

उनकी अनुकम्पा के कुछ उदाहरण देखिये—

मैंने एक समय प्रश्न किया कि 'सद्‌गुरु श्रोत्रिय और ब्रह्मनिष्ठ दोनों ही क्यों होना चाहिये ?' बोले—"जो स्वयं ब्रह्मनिष्ठ नहीं है, वह ब्रह्म का यथार्थ उपदेश किस प्रकार करेगा ? 'असत्य से सत्य की उत्पत्ति नहीं होती', अतः जहाँ जो चीज नहीं है, वहाँ कैसे मिलेगी ? ज्ञान बघारने वाले बोध चञ्चु उपदेश को अनुभवारूढ़ कैसे करा सकेंगे ? परन्तु श्रोत्रिय होना क्यों आवश्यक है ? इसलिए क्योंकि ब्रह्मनिष्ठ यदि परम्परा से श्रोत्रिय नहीं होगा तो भिन्न-भिन्न शंकाओं का सम्यक् समाधान करने में असमर्थ सिद्ध होगा।"

एक बार चर्चा चली कि आजकल कलिकाल में आचार-विचार, शासन, सत्ता, शिक्षा एवं मनोभाव प्रायः विरुद्ध होने पर वर्णाश्रम आदि धर्म किस प्रकार पालन किये जायें। महाराज जी ने उत्तर दिया कि ईश्वर एवं धर्म में दृढ़ विश्वास करके कट्टरता से किन्तु युक्तिपूर्वक पालन किया जाय, ताकि किसी अन्य का अपमान न हो तथा वृथा कष्ट न पहुँचे। उदाहरणार्थ—यह कहने की बजाय कि हम किसी जाति या व्यक्ति विशेष तथा बाजार का पक्व अन्न ग्रहण करते या नहीं करते हैं, यह नियम बनाना एवं बताना चाहिये कि हम अपने पूजा के भगवान को ही विधिवत लगा भोग खाते हैं तथा भगवान के शास्त्रोक्त रीति से नैवेद्य अर्पण होता है। इस नियम के पालन में किसी भी कानूनी अथवा सामाजिक आपत्ति की सम्भावना नहीं है और किसी के प्रति घृणा एवं अपमान की भावना नहीं है। इस प्रकार धर्म भली प्रकार पालन हो सकेगा।
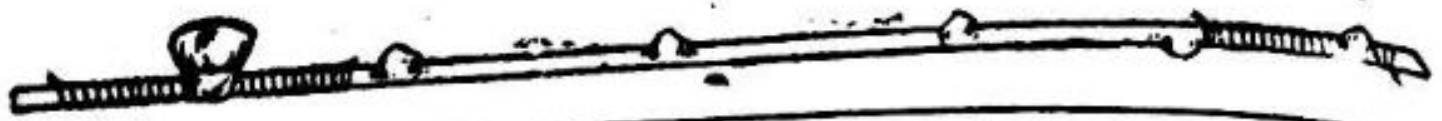
महाराज जी ने अलौकिक उपदेश विशेषरूप से दिये—

(१) तत्त्व विचार निष्ठुर होकर करना चाहिये, तत्त्व निर्धारण में (ब्रह्मात्मैक्यबोध में) ढिलाई से काम नहीं चलता।

(२) अन्त:करण भगवद्भक्ति से ओत-प्रोत हो, क्योंकि अन्तर्यामी परमात्मा की अनुकम्पा से ही परमार्थ में प्रीति प्रवृत्ति और परिपक्व स्थिति सम्भव है श्रवण-मनन तो बहुत व्यक्ति करते हैं, परन्तु बोध सबको कहाँ हो पाता है? इसलिये अन्तर्यामी का अनुग्रह अपेक्षित है, तदर्थ शरणागति आवश्यक है।

(३) यद्यपि ब्रह्मतत्त्व में परिनिष्ठित महापुरुषों का कोई कर्तव्य शेष नहीं रहता, फिर भी प्रपञ्च की प्रतीति पर्यन्त व्यवहार शास्त्रानुकूल करना ही परमावश्यक है। ज्ञान एवं भक्ति के बल पर शास्त्र विरुद्ध आचरण क्षम्य नहीं।

उक्त उपदेश में ज्ञान, उपासना और कर्म का कितना सुन्दर समन्वय है; वस्तुत: यह समस्त जिज्ञासु व साधकों के लिये प्रशस्त राजमार्ग है। साथ ही अन्य मार्ग की निन्दा करते हुये एक मार्ग को ही महत्त्व देने वालों को चेतावनी है।

महाराज जी का पार्थिव शरीर आज हमारे मध्य में नहीं है, किन्तु अग्निरथ-न्याय के अनुसार उनका प्रतीयमान शरीर ब्रह्मज्ञान समकाल ही दग्ध हो गया था। केवल बाधितानुवृत्ति से लोक कल्याण में संलग्न दर्शन देता था, परन्तु तत्त्वदृष्टि से और भावराज्य की दृष्टि से उनकी अनुपस्थिति नहीं है। आप श्री मूर्त से अमूर्त, स्थूल से सूक्ष्म, व्यष्टि से समष्टि तथा परिछिन्न से अपरिछिन्न हो गये। अत: अब देश काल व व्यक्तित्व की उपाधि व उसके व्यवधान के बिना समस्त अधिकारियों को दर्शन व अनुभूति निस्सन्देह निरन्तर प्रदान करेंगे।

हमारा कर्त्तव्य है कि महाराज श्री की पुण्य स्मृति जागृत रखते हुये, उनके निर्दिष्ट मार्ग पर सर्वदा अग्रसर रहें तथा विपत्ति उपस्थित होने पर भी धर्म प्रतिपादित मर्यादा का कदापि उल्लंघन न करें। प्रार्थना है कि महाराज श्री हमको इस कर्त्तव्य के परिपालन की शक्ति प्रदान करने की सर्वदा कृपा करें।
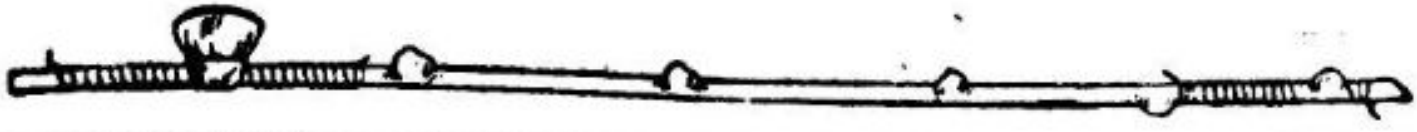
श्रीहरिः

धर्म और ब्रह्म के मर्मज्ञ सर्वभूत हृदय धर्मसमाट श्री स्वामी करपात्र महाभाग

पूज्यपाद १००८ श्री स्वामी निश्चलानन्द सरस्वती जीमहाराज, श्रीधाम वृन्दावन (मथुरा)

धर्म और ब्रह्म के मर्मज्ञ

मन्त्र और ब्राह्मणात्मक वेद और वेदानुकूल शास्त्र ही धर्म और ब्रह्म में प्रमाण हैं। धर्म भव्य (अनुष्ठेय) है, जबकि ब्रह्म घट-पटादि के समान सिद्ध होते हुए भी मन और वाणी का अविषय। इसलिये इतर प्रमाणों की इनमें गति नहीं है। विधि और निषेध मुख से वेद धर्म और ब्रह्म का निरूपण करते हैं। धर्मनिष्ठ और ब्रह्मनिष्ठ का जीवन ही जीवन है। धर्मनिष्ठा और ब्रह्मनिष्ठा से विरहित जीवन का कोई तात्त्विक महत्त्व ही नहीं। धर्मनिष्ठा भी ब्रह्मनिष्ठा में ही पर्यवसित होती है। वस्तुतः धर्म का धर्म भी ब्रह्म ही है। प्रातः स्मरणीय अनन्त श्री विभूषित सद्गुरुदेव श्री स्वामी जी महाराज जहाँ धर्म-ब्रह्म के मर्मज्ञ थे, अद्वितीय व्याख्याता और लेखक थे वहाँ धर्म और ब्रह्म में उनकी अपार निष्ठा थी। भक्ति, ज्ञान और वैराग्य की उनमें पूर्ण प्रतिष्ठा थी। वे ज्ञान-वैराग्य और भक्ति की त्रिवेणी ही थे। परमभागवत अर्थात श्रीमत्परमहंस थे।

पञ्चदेवोपासक

आप श्री माँ त्रिपुरसुन्दरी की दैनिक उपासना करते हुये 'शाक्त' परिलक्षित होते थे, पार्थिव पूजन और नर्मदेश्वर पूजन करते हुये 'शैव' आलोकित होते थे, सूर्य-नमस्कार के समय 'सौर' दृष्टिगोचर होते थे और शालग्राम पूजन के समय वैष्णव। आप प्रति पूर्णिमा सत्यनारायण भगवान की पूजा करते और स्वयं कथा करते थे। एकादशी व्रत निर्जल ही रहते थे। वामन द्वादशी के दिन श्री वामन भगवान का पूजन करते थे। गणेश चतुर्थी के दिन श्री गणेश भगवान का विधिवत पूजन करते समय आप पूर्ण 'गाणपत्य' ही परिलक्षित होते थे। श्रीकृष्णजन्म, श्रीराधाष्टमी, श्रीशिवरात्रि, अनन्त चतुर्दशी और ऋषिपञ्चमी का महोत्सव भी विधिपूर्वक बड़े उत्साह के साथ मनाते थे। आप धर्म के लिये सर्वस्व न्यौछावर करने को सदा तत्पर रहते थे। विग्रहवान धर्म ही थे। सनातन धर्म के रक्षक (शाश्वत धर्मगोप्ता, गीता ११-१८) थे। गोमाता, गोवंश की रक्षा के लिये प्राणों को सदा हथेली पर रखते थे। भक्तराज प्रह्लाद के समान ही सुदृढ़ सत्याग्रही थे। जहाँ अवतार काल में भी क्रूर और धर्म विरोधी सरकार का विरोध ब्राह्मण, ब्रह्मर्षि और देवर्षि तक के लिये बहुधा असम्भव परिलक्षित हुआ है, वहाँ आपने अदम्य उत्साह के साथ आजीवन सत्याग्रह कर अद्भुत धैर्य का परिचय दिया है।

रोग भी राम

भगवत्कथा के रसिक तो आप महाराजा पृथु के समान ही थे। जब चिकित्सकों की ओर से आप अस्वस्थ घोषित कर दिये गये तब भी आप की आन्तर स्वस्थता इस प्रकार झलक रही थी — "सम दुःख सुखः स्वस्थः समलोष्टाश्मकाञ्चनः। तुल्यप्रियाप्रियोधीरस्तुल्यनिन्दात्म संस्तुतिः ॥" (भगवद्गीता १४-२४) "जिन्ह के श्रवण समुद्र समाना। कथा तुम्हारि सुभग सरिनाना॥ भरहिं निरंतर होंहि न पूरे। तिन्ह के हिय तुम्ह कहु गृह रूरे॥" (रामचरितमानस २०-१२७-४, ५) रुग्णता की पराकाष्ठा में भी आप कहा करते थे —"भगवान की अपार कृपा है, कहाँ कोई कष्ट है? कथा सुनने के लिये मिल ही रही है। सन्त-महात्मा और वैदिक ब्राह्मणों का दर्शन भी मिल ही रहा है। इससे बढ़कर भला कौन सी कृपा हो सकती है? रोना भी चाहो तो भगवान के लिये कहाँ रोया जाता है? यह तो भगवानकी अपार अनुकम्पा ही है कि कथा सुनते सुनते रोना आता है।" वस्तुतः ऐसा कहकर आप भगवत्कृपानुभूति का अनुपम रस-रहस्य व्यंजित करते थे। कोई तो भोग को योग में छिपाकर रखते हैं, परन्तु महाराजा जनक ने योग को भोग में छिपाकर रखा, लेकिन उसे भी सदा के लिये छिपाकर रख न सके, क्योंकि आन्तर योग्यता का प्रकाश परमेश्वर को ही अभीष्ट जो ठहरा भगवान श्री रामभद्र को विलोकते ही वह योग (परमात्मा में परम प्रीति) प्रकट हो गया – जोग भोग महँ राखेउ गोई। राम विलोकत प्रगटेउ सोई॥" (रामचरितमानस १-१६-२) ॥ इसी प्रकार पूज्य-पाद श्री सद्गुरुदेव ने रुद्राभिषेक तथा विविध न्यासों द्वारा निज विग्रह को ब्राह्मी तनु के रूप में अभिव्यक्त किया तथा उन्होंने धर्म नियन्त्रित सामाजिक, राजनैतिक विविध आदर्श व्यवहार में उसे संलग्न-सा रखा था और योग (भगवान में अनन्य प्रीति) को छिपा-सा रखा था, परन्तु रोग के दर्शन का वही लोकोत्तर चमत्कारी प्रभाव पड़ा जो महाराज जनक पर श्रीरामभद्र के दर्शन का पड़ा था। रोग ने बाह्य व्यवहार का अपहरण कर लिया और अखण्ड प्रीतियुक्त भगवद्भजनमात्र को अव-शिष्ट रखा।

अहर्निश कथामृत का पान करना, लीला स्फूर्ति में आनन्दाश्रुओं को अविरल विमोचित करना, रामरक्षा-स्तोत्र, विष्णुसहस्रनाम, ललितासहस्रनामादिका तथा श्रीमद्भागवत, योगवासिष्ठ, उपनिषद, आनन्दरामायण, रामचरितमानस आदि का श्रवण करना, सप्तशती आदि का पाठ करना तथा सकल व्यवहारों से परम उपराम हो अखण्ड प्रफुल्लित 'पदार्थ भावना' की स्थिति में वस्तुतः स्वयं तुरीय रूप में अवस्थित अविमुक्त क्षेत्र में निवास करना, यही उनका दैनिक कृत्य अवशिष्ट था।

अलौकिक प्रतिभा

आप श्री का योगपट (संन्यास का नाम) श्री स्वामी हरिहरानन्द सरस्वती जी था। आप श्री 'करपात्री' जी के रूप में लोक प्रसिद्ध थे। अनन्त श्री स्वामी ब्रह्मानन्द जी महाराज आप श्री के

गुरु थे। अनन्त श्री स्वामी कृष्णानन्द सरस्वती जी महाराज आपके परम गुरु थे। अनन्त श्री स्वामी अनिरुद्धानन्द सरस्वती जी महाराज आप के परमेष्ठि गुरु थे। 'श्री विद्या' के आप परमाचार्य थे। इस दीक्षा परिपाटी में आप श्री षोडशानन्दनाथ के रूप में प्रसिद्ध थे। षड्दर्शनाचार्य पण्डित स्वामी श्री विश्वेश्वराश्रम जी महाराज से आप ने व्याकरण, दर्शन, भागवत आदि ग्रंथों का अतिस्वल्प समय में ही अनुशीलन कर सबको चमत्कृत कर दिया था। यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य' (गीता १६/२३-२४) ये श्लोक आपके जीवन के मूलस्तम्भ रहे। आप महर्षि याज्ञवल्क्य, मनु, वसिष्ठ और व्यासादि के अनुसार धर्म और ब्रह्म की व्याख्या करते थे। समस्त शंकाओं का अत्यन्त सुचारु प्रामाणिक एवं हार्द समाधान देते थे। आप में 'अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः।' (गीता १६/१) आदि दैवी सम्पदा पूर्णरूप में प्रतिष्ठित थी।

आप ओजस्वी और विद्वान तो साक्षात शंकर के समान ही थे। महर्षि व्यास, आचार्य जैमिनि, शंकर, और भामतीकार का एक साथ दर्शन आपके ग्रंथों और भाष्यों में होता है। शीर्षासन करते समय आप योगेश्वर परिलक्षित होते थे। नीति निरूपण में आप वृहस्पति और शुक्र के तुल्य ही थे।

"देहत्याग कहाँ और कैसे हो, इसका आग्रह नहीं रखना चाहिये। तत्त्वविचार निष्ठुर हृदय से करना चाहिये।" एकांत में ऐसा कहकर आपने जहाँ तत्त्वनिष्ठा व्यक्त की वहाँ "देवयान से उत्क्रमण आन्तरिक योग्यता के अनुसार प्राप्त होता है। देवयान के अधिकारी की दक्षिणायन में देहत्याग से भी शुक्लगति ही प्राप्त होती है।" ऐसा कहकर आप श्री ने जहाँ उत्क्रमण-विज्ञान का रहस्योद्घाटन किया, वहाँ वाराणसी में उसमें भी केदारखण्ड में, उसमें भी साक्षात केदारेश्वर के पार्श्व में, उसमें भी माघ शुक्ल चतुर्दशी उपरांत पूर्णिमा उत्तरायण पुष्य नक्षत्र में प्रातः ६-२०, रविवार वि० सं० २०३८ (दिनांक ७-२-८२) के दिन स्वरूप में अवस्थित हो, सबसे विरक्त और विविक्त हो, शांतिपूर्वक 'शिव, शिव' कहते देहत्याग कर भक्तिनिष्ठा और योगनिष्ठा को साकार किया आप श्री ने।

जहाँ आप सिद्धांतनिष्ठ होने के कारण बाहर से बहुतों को हठी परिलक्षित होते थे, वहाँ हृदय से करुणासिंधु ही थे।

विप्र-धेनु-सुर और सन्त के परमोपासक

'विप्रधेनुसुरसन्त हित लीन्ह मनुज अवतार' यह उक्ति आप के सम्बन्ध में पूर्णतः चरितार्थ होती है। आप यज्ञयुग के प्रवर्तक थे, ब्रह्मण्य देव और परम गोभक्त थे। सम्पूर्ण भारत के श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ ब्राह्मण आपको अपना पोषक और आचार्य मानते थे। वस्तुतः आप सर्वभूत हृदय ही थे।

मुमुक्षुओं के शरण्य

जहाँ आप श्री धर्म नियन्त्रित राजनीति के प्रेरक और प्रकाशक थे, वहाँ मुमुक्षुओं के शरण्य थे। मुमुक्षुओं और विद्याप्रेमियों पर कृपा करके विगत कई वर्षों से आप चातुर्मास्य में वाराणसी ही विराजते थे। प्रस्थानत्रयी, अद्वैतसिद्धि, खण्डन-खण्ड-खाद्य, चित्सुखी, पञ्चदशी, न्याय, मीमांसा, सांख्य, योग, वेद, व्याकरण, तन्त्र, नैषध, एवं श्रीमद्भागवत को पढ़ाते समय आप इन दर्शनों के समग्र रस-रहस्यों को अद्भुत दक्षता के साथ व्यक्त करते थे। सायं प्रवचन के सन्दर्भ में काशीखण्ड की और श्रीमद्भागवत की अनुपम व्याख्या भी करते थे। आप जन्म-कर्म से वर्णाश्रम, अवतारवाद और अद्वैत-वाद के पूर्ण समर्थक थे। समन्वय की अनुपम दृष्टि आप में सहज प्रतिष्ठित थी। श्री राधासुधानिधि, महावाणी और श्रीमद्भागवत एवं श्रीमद्वाल्मीकि रामायण के रस-रहस्य आप के श्रीमुखचन्द्र से जिस अनुपम रीति से प्रकाशित होते थे उनका श्रवण सभी सम्प्रदाय के आचार्य आश्चर्यचकित होकर करते थे। तत्तत् सम्प्रदायों के प्रामाणिक आचार्य आप को हितावतार, व्यासावतार, शुकावतार, बाल्मीकि और लव-कुशावतार मुक्तस्वर से घोषित किये बिना रह नहीं पाते थे। भगवान राम और भगवती सीता में अद्भुत प्रीति आपको जन्म से ही प्राप्त थी। भृकुटी के मध्य और बाहों में जहाँ भस्म से ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करते थे वहाँ भाल पर त्रिपुण्ड और पूजन के पश्चात कुमकुम की बिन्दी भी धारण करते थे। गले में जहाँ तुलसी की माला धारण करते थे वहाँ रुद्राक्ष और स्फटिक की माला भी। भग-वान को बड़े प्रेम से बिल्वपत्र और तुलसी निवेदित करते थे। जब कभी किसी से प्रमाद से तुलसीदल खो जाता या बहुत कम मात्रा में ही प्राप्त हो पाता, आप विह्वल-से हो जाते। जब कभी प्रचुर मात्रा में तुलसी आदि पूजन की सामग्री होती आप बड़े ही चाव से उत्फुल्लता व्यक्त करते हुए उन्हें भगवान को समर्पित करते। जब कभी तुलसी की माला आपको निवेदित करते तो आप फूले न समाते, अत्यन्त प्रसन्न होकर धारण करते और तत्काल जप प्रारम्भ कर देते। सोने, चाँदी और कागज की लक्ष्मी कभी गिनते हुये आप नहीं पाये गये। लेकिन, तुलसी और रुद्राक्ष की मालाओं को गले में धारण करते उन्हें सम्भाल कर रखते और यदा-कदा कुतूहलवश गिनते भी पाये जाते। आप मुक्त होते हुये भी लीला-विग्रह धारण करके भजन करने वाले शङ्कर, शुक और सनकादि एवं नारदादि सरीखे कारक कोटि के सिद्ध महापुरुषों में थे।

आप मुमुक्षुओं को प्रेरणा प्रदान करते—"भाई! श्रवण, मननादि तो बहुत से व्यक्ति करते हैं; परन्तु श्रवणादि उन्हीं के सफल हो पाते हैं जो भगवान के शरणागत हैं।" 'काशी मोक्ष धाम है। यहाँ देहत्याग से मोक्ष अवश्य मिलता है।' इस तथ्य की पुष्टि आप मुक्तिकोपनिषद, जाबालोपनिषद, काशीखण्ड, केदारखण्ड, सुरेश्वराचार्य विरचित 'काशी मोक्ष निर्णयः' के अनुसार तो करते ही थे राम-चरितमानस और विनय पत्रिका के अनुसार भी करते थे। आप ऋग्वेद से लेकर हनुमान चालीसा तक का सम्मान करते थे, समन्वय करते थे।
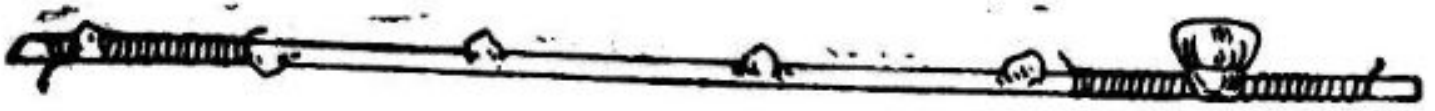
'वेदशास्त्रानुसन्धान संस्थान केदारघाट' की बात है। आपके निवास कक्ष में चूहे रात में उपद्रव करने लगे। वैसे ही आप बहुत कम सोते थे। वे चूहे तो अल्प निद्रा में भी विघ्न पहुंचाने लगे थे। आपने सचिव-सेवक से कहा—'चूहे बहुत उपद्रव करने लगे हैं। सो नहीं पाता।' उत्तर मिला—'आज्ञा मिले तो चूहे दानी में फंसाकर इन्हें गंगा में डाल दूँ या पड़ोस में छोड़ दूँ या काशी की सीमा के बाहर छोड़ दूँ ?'' आप श्री मुस्कराते हुए बोले—'अरे भाई ! गंगा में छोड़ोगे तो मर सकते हैं, इन्हें बहुत कष्ट होगा। सीमा के बाहर छोड़ेगे तो ये मुक्ति से वंचित रह जायेंगे। पड़ोस में छोड़ेगे तो हमारे पड़ोसी कष्ट पायेंगे। इसलिए यह सब उपद्रव मत करो। हमें ही कष्ट सहने दो। शास्त्रों को जानने और धर्म पर चलने पर तो पग-पग पर कष्ट सहने के लिए तैयार रहना पड़ता है।'

आपकी उपस्थिति से श्री शंकराचार्यों की प्रतिष्ठा थी, दण्डी स्वामियों की शोभा थी। आप धर्मविरोधियों और ढुलमुल पंथियों के लिए तथा स्वयंभू आचार्यों के लिए अंकुश थे।

इस प्रकार आप श्री उन्मुक्त आत्माराम परम-निष्काम श्रीमत्परमहंस सर्वभूतहृदय श्रीहरि-हर ही थे। सचमुच में धर्मनिष्ठ ब्रह्मनिष्ठ भगवद्भक्त और दीनवत्सल थे। सर्वभूतहृदय अन्तरात्मस्व-रूप होने के कारण आप हमारे परमआत्मीय और साक्षात आत्मा ही हैं। आपकी अनुकम्पा के अमोघ प्रभाव से हम आपके द्वारा निर्दिष्ट पथ पर आनन्दपूर्वक चलते रहें, यही प्रार्थना है।

॥ श्रीहरिः ॥

संस्मरण

आप श्री ने देहत्याग के छह महीने पूर्व वृन्दावन बिहारी भवन वाराणसी में कहा –तात्त्विक ढंग से विचार करो तो अहंकार कोई तत्त्व सिद्ध नहीं होता, परन्तु थोड़ा भी प्रमत्त होते ही क्षण भरमें भयंकर उपद्रव खड़ा कर देता है। यह हमारा अनुभव है। अहमर्थ परमार्थसार में इस अहंकार की अतात्त्विकता का हमने विस्तारपूर्वक विचार किया है।

● वेदों में कुश, चरु आदि के लिए भी सम्बोधन है। इससे सिद्ध है कि कर्मकाण्डपरक श्रुतियाँ भी सम्पूर्ण प्रपञ्च चिद्रूपता—चिन्मयता ही सिद्ध करती हैं। तुम भी सबको चिन्मय-चिद्रूप-आत्म-स्वरूप ही समझो।

● देहत्याग के लगभग छह महीने पूर्व आप श्री ने कहा—हमने धर्मदृष्टि के कारण अपने कई सन्निकट के व्यक्तियों – मित्रों, शिष्यों, भक्तों को समय-समय पर दूर भी रखा; परन्तु कभी 'किसी का बुरा हो' ऐसा नहीं सोचा। अब तो मैंने अपनी ओर से सबको अभय दान दे दिया है। जिन लोगों को पास आने के लिए पहले सख्त मना कर दिया था, उन्हें भी बेटा ! बेटी ! भैया ! कहकर सम्बोधित करना आरम्भ कर दिया है। अन्तिम समय है, किसी के प्रति हृदय में यह भावना न रह जाय कि अमुक बुरा है।

● देहत्याग के लगभग सात महीने पूर्व आप श्री ने कहा—किसी को अनीतिपूर्वक सताये जाते देखकर मेरा हृदय विद्रोही बन जाता है। संस्था में समन्वय की भावना होनी चाहिये। किसी को छोटा समझ कर उसके प्रति दुर्व्यवहार नहीं होना चाहिये। सबके मान व्यक्तित्व का समादर होना चाहिये।

● देहत्याग के लगभग आठ महीने पूर्व एक प्रसंग में आप ने कहा 'अपने पक्ष का मूर्ख और विपक्ष का धूर्त समान है।' यह नियम आज तक व्यवहार में कभी व्यभिचरित नहीं हुआ। इस नियम को ध्यान में रखकर संस्था का संचालन करना चाहिये।

● वार्तालाप के संदर्भ में आपने एक बार कहा—मेरी पहले धारणा थी कि और सम्प्रदाय तो अच्छे हैं, पर मध्व सम्प्रदाय में भयंकर लोग ही रहते हैं। जब मैं दक्षिण-उडूपी की ओर गया, मध्व सम्प्रदाय के कुछ साधु सम्पर्क में आये। उनका निष्कपट गंगाजल—जैसा निर्मल हृदय देखकर मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि अच्छे-बुरे सब जगह होते हैं। अच्छे व्यक्ति के बिना कोई सम्प्रदाय टिक ही नहीं सकता। किसी सम्प्रदाय-संस्था में कम तो किसी में ज्यादे, होते सब में अच्छे व्यक्ति हैं।

[ईश्वर यदि सत्य वस्तु है तो किसी के चाहने या न चाहने से उसका कुछ भी नहीं बिगड़ सकता। भले ही चमगादड़ों को सूर्य का प्रखर प्रकाश असत्, अनावश्यक एवं हानिकारक प्रतीत होता हो, परन्तु एतावता सूर्य असत्, अनावश्यक एवं हानिकारक नहीं सिद्ध होते। वैसे किसी को ईश्वर भले ही असत्, अनावश्यक एवं हानिकारक प्रतीत हो, फिर भी उसकी प्रचन्ड सत्ता का अपलाप होना असम्भव है। वस्तुतः सूर्यनारायण से भी अधिक सूर्य चन्द्र का भी भासक एक स्वतः सिद्ध सर्वमान्य वस्तु है। यह बात आधुनिक अन्वेषण, न्याय-सांख्य-वेदांत-दर्शन, आस्तिकसिद्धांतों तथा आस्तिकवादों से स्पष्ट सिद्ध है। धर्म एवं ईश्वर परम सत्य वस्तु है, इसीलिये सर्वकाल एवं सर्व-देश से इसकी मान्यता रही है।]

— करपात्र स्वामी

भगवत्स्वरूप धर्मसम्राट्

—पूज्यपाद १००८ श्री स्वामी चिन्मयानन्द सरस्वती जी महाराज,
श्री धाम, वृन्दावन।

स्वसुख निभृत चेतस, निकुञ्ज बिहारी, अखिल रसामृत मूर्ति, परमकारुणिक, अगाध सुधा-सिन्धु के अजस्रस्रोत श्रीभगवान् अनुपम २ रूपों में अपने आपको अभिव्यक्त करते हैं। अभिव्यक्त प्रभु स्वमायावशीकृत लोकानुरञ्जनार्थ, स्वधर्म संस्थापनार्थ, साधु परित्राणार्थ मुदमयी कल्याणकारी लीलाओं से समन्वित विहरण करते हैं। सर्वज्ञ सर्व समर्थ प्रभु ही स्वयं को भक्त (आराधक और स्वयं को ही भजनीय (आराध्य) के रूप में प्रकट करते हैं। अनादि सिद्ध नियति के अनुसार जिस समय जैसे रूप की जिस रूप में आवश्यकता अनुभव करते हैं, उसी रूप में लीला भूमि भारतवर्ष में अवतरित हो जाते हैं। महामहिम सन्त विरक्त अमलात्मा परमहंस श्री प्रभु के ही स्वरूप होते हैं। उनके हृदय, आत्मा, मन सब कुछ आप ही होते हैं। ऐसे सर्वभूत हितेरताः सन्त भी आपके ही रूप होते हैं। उनकी जीवन लीलाओं में भी प्रभुप्रेरित लोककल्याणार्थ, धर्म संरक्षणार्थ अलौकिक प्रीति देखी जाती है। ऐसी ही परम विभूति भगवत्स्वरूप सर्वभूत हृदय श्री गुरुपाद स्वामी श्री करपात्री जी महाराज थे।

श्री स्वामिपाद यावज्जीवन ब्रह्मनिष्ठा, धर्मनिष्ठा तथा भगवत्प्रीति से ओतप्रोत रहे। कर्म, उपासना और ज्ञान तीनों ही अंशों में आपकी अपार निष्ठा थी। त्रिकाण्ड के माहात्म्य में सम्यक् निष्ठा रखते थे। उनकी पारमार्थिकी निष्ठा अखण्डसच्चिदानन्द स्वरूप ब्रह्म थी। व्यावहारिक जीवन में धर्म परायणता तथा भगवद्भाव का समादर था। धर्मनिष्ठा और ब्रह्मनिष्ठा का जो समन्वय आपके जीवन में था, जिज्ञासुओं के लिये आदर्श है। परमार्थ 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या' की दृष्टि आपके जीवन में पूर्ण रूप में प्रतिष्ठित थी परन्तु व्यवहार धर्म को प्रमाण मानकर करते थे जब तक व्यावहारिक स्थिति का भान है तब तक धर्मानुकूल आचरण के पक्षपाती थे। परमार्थ की जिस अवस्था में व्यवहार छूट-सा जाता है, वहाँ व्यवहार भी परमार्थ ही हो जाता है। इन सब दृष्टियों को अपने जीवन में उतार कर दिखाया। अस्वस्थ स्थिति में भी जिस समय कुछ होश होता तो ब्रह्मदृष्टि का ही स्मरण करते, भगवन्नाम का ही स्मरण होता था। योगवासिष्ठ में पदार्थ-भावना की स्थिति में सब व्यवहार छूट-सा जाता है। ऐसे योगी के जीवन का निर्वाह अन्यों के द्वारा ही सम्भव होता है। श्री स्वामी जी के अन्तिम जीवन में यह 'पदार्थ-भावना' अवस्था पूर्णरूपेण देखी गयी। उनको अपने आसन, शौचालय तथा सेवा में रहने वाले ब्रह्मचारियों का विस्मरण हो जाता था, परन्तु भागवत् स्वरूप भगवन्नाम का एक क्षण भी विस्मरण नहीं हुआ।

महाराज श्री तपस्वी, धर्मनिष्ठ, त्यागी और सरल प्रकृति के सन्त थे। सच्चे अर्थ में महात्मा थे, जिसका लक्षण शास्त्रों में बताया गया है—मन, वचन और कर्म में जो एक सा होता है वह

महात्मा माना जाता है और जिसके मन में कुछ दूसरा, वचन में कुछ दूसरा जिसका जीवन होता है वह दुरात्मा होता है—

'मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं महात्मनाम् ।
मनस्वन्यद् वचस्यन्यत् कर्मण्यन्यद् दुरात्मनाम् ॥

श्री महाराज जी महात्मा थे। उनकी मेधा और संस्कृत वाङ्मय का ज्ञान अगाध था। काशी के विद्वान् ब्राह्मण तो आप श्री को यज्ञ युग प्रवर्तक ही मानते हैं। आपने यज्ञों की विस्मृत तथा लुप्त प्राय परम्परा को पुनर्जीवित किया। अनेकानेक यज्ञों का आयोजन किया, कई यज्ञ तो ऐसे विशाल रूप में हुए जो सदियों से नहीं हो पाए थे। दिल्ली यज्ञ के बारे में लोगों का कहना है कि ऐसे यज्ञ का आयोजन धर्मराज युधिष्ठिर के बाद आज तक नहीं हुआ।

वेद-शास्त्रों के यथार्थ व्याख्याता

वेद और शास्त्र स्वामी जी के विचारानुसार पूरे विश्व के लिए शाश्वत संविधान हैं। उनमें जिन नियमों और आचारों का वर्णन किया गया है उनका पालन संसार के सुख और शान्ति का स्रोत है। इसमें आधुनिक विद्वानों द्वारा किसी प्रकार का संशोधन एवं परिवर्तन नहीं हो सकता, आवश्यकता केवल उसे ठीक ढंग से समझने और जीवन में उतारने की है। स्वामी जी ने वेदों की अपौरुषेयता का अत्यन्त प्रभावशाली ढंग से समर्थन किया है और उसके सर्वोच्च प्रामाण्य को प्रतिष्ठा की है। उनका कहना था कि वेद अन्तिम प्रमाण हैं। उसके अनुरूप किसी भाषा में जो छोटे-मोटे ग्रंथ लिखे गये हैं, वे सब प्रमाण हैं। कोई भी ग्रंथ चाहे कितने भी बड़े विद्वान् का लिखा क्यों न हो यदि वह वेदशास्त्रानुरूप नहीं है तो उसे मान्यता नहीं मिलनी चाहिये क्योंकि उससे मनुष्य का सार्वकालिक एवं वास्तव हित साधन नहीं हो सकता।

सनातन धर्म के सजग प्रहरी

महाराज श्री सच्चे जागरूक चिन्तक थे। वर्तमान युग की समस्याओं को शास्त्रीय दृष्टि से जितनी गहराई और सूक्ष्मता के साथ आकलन करते थे, उतनी ही गम्भीरता के साथ शास्त्रानुसारी समाधान भी वे ढूंढ़ने का प्रयास करते थे। आज के युग में विश्व के सभी विकसित देशों में पश्चिम के दार्शनिक 'मार्क्स और फ्रायड' के विचारों का प्रभाव है उतना और किसी दर्शन का प्रसार नहीं है। महाराज जी ने उनके भौतिकवादी कल्पित मान्यताओं का बड़ी गहराई से परीक्षण करते हुये उनका खोखलापन और उनकी निःसारता प्रतिपादित की है। इसके साथ ही उन्होंने भारतीय शास्त्रों की एवं आध्यात्मिक दृष्टिकोण के गम्भीर परिचिन्तन के साथ समाधान भी प्रस्तुत किया। मार्क्सवाद और रामराज्य, पूँजीवाद, समाजवाद आदि विषयक उनकी कृतियों में इनका अवलोकन किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त शास्त्रीय मान्यता में अडिग आस्था होने के साथ उस दृष्टि से तथा समय

पर होने वाले अनेक सामाजिक-धार्मिक प्रश्नों के समाधान में शास्त्रपोषित पक्ष को वह उपस्थापित करते थे। जब-जब विदेशी सत्ता से प्रभावित सरकार ने भारतीय धार्मिक संविधानों के विपरीत कदम उठाया और कार्यान्वित करना चाहा, महाराज जी ने उनका डटकर विरोध किया तथा पूर्णरूपेण पारित न होने दिया। उदाहरण के लिये हिन्दू कोडबिल, परिवार नियोजन, गौवध आदि धर्म के विपरीत सरकार विधान लागू कर रही थी। इन सबको जन सहयोग प्राप्त कर रोककर भारतीयता की रक्षा की। समाज को पतनोन्मुख होने से बचाया। इसी प्रकार शास्त्र के विपरीत जहाँ से भी आवाज आती जैसे कतिपय विद्वान् 'संभोग से समाधि' अशास्त्रीय सिद्धान्त प्रस्थापित कर पुस्तकों द्वारा प्रचार करने लगे। इसका स्वामी जी ने डटकर शास्त्रीय विरोध किया तथा सिद्ध कर दिया कि 'संभोग से समाधि' का पन्थ अशास्त्रीय है। अतः सुख-शान्ति चाहने वालों को शास्त्रों का ही अनुसरण करना चाहिये। इस प्रकार भारतीय जनता को स्वस्थ मार्ग दर्शन प्रदान किया। वे सच्चे अर्थों में धर्म-प्राण एवं धर्मसम्राट् थे।

अध्यात्म-प्रेरक

श्री महाराज जी वर्तमान युग के आदर्श अध्यात्म प्रेरक थे। उनका जीवन आध्यात्मिक सांचे ढांचे में ढला हुआ था। उसी रीति से प्रत्येक समस्या का उचित समाधान भी देने का प्रयास करते थे। आध्यात्मिक दृष्टि से प्रवचन, लेखन एवं विचार अभिव्यक्त करते थे। उनके विचार से सच्चे अर्थों में आध्यात्मिक दृष्टि अपनाकर ही स्वयं का, देश का तथा समाज का कल्याण सम्भव है। एक बार बीमारी की स्थिति में अपने अनुयायी कार्यकारिणी समिति के सदस्यों की विचारधाराओं की गति विधि जानने के लिये स्वामी श्री निश्चलानन्द सरस्वती से पूछा कि ये लोग आपस में विचार आध्यात्मिक दृष्टि से करते हैं या नहीं? उनका सिद्धान्त था कि आध्यात्मिक दृष्टिकोण को भूलते ही कोरा भौतिकवाद स्वार्थ का नग्न नृत्य बन जाता है।

आध्यात्मिक पुरुष ही सच्चा राजनैतिक, सच्चा समाज सुधारक, सच्चा देश भक्त तथा समाज सेवी हो सकता है। वह सबका आत्मा होता है, सबके प्रति आत्मीयता होती है, स्वार्थ परमार्थ के रहस्य को समझता है और सच्चा धर्मपालक तथा न्यायकुशल होता है। उसी के मार्ग दर्शन में देश की, समाज की समस्याओं का उचित समाधान हो सकता है।

श्री स्वामी जी भारत के केवल धार्मिक एवं आध्यात्मिक नेता ही नहीं थे, अपितु वे राजनैतिक नेता भी थे। जिस राजनीति को वे भारत के हित में समझते थे जिसके द्वारा देश में वेदों के ईश्वर राज्य, रामायण के रामराज्य और महाभारत के धर्मराज्य की स्थापना हो सकती थी, उसे प्रतिष्ठित करने के उद्देश्य से धर्मसंघ एवं रामराज्य परिषद की स्थापना की थी। श्री स्वामी जी भारत में वेदों तथा रामायण के रामराज्य को लाने के लिये व्यष्टि रामराज्य बनाने पर विशेष बल देते थे। वे कहते थे देश में तो रामराज्य हो, तब हो, कब हो, पहले हम आपको अपने हृदय में राम-

राज्य की प्रस्थापना कर लेनी चाहिये। आत्मराज्य की प्रतिष्ठा से ही कामराज्य का अन्त सम्भव है। आत्मनिष्ठ भगवद्भक्त होना ही रामराज्य की सुदृढ़ स्थापना है। उसके लिये धर्म और उपासना सीढ़ी हैं। जो आत्मनिष्ठ हो गये उनकी दृष्टि में तो सर्वत्र रामराज्य हो ही गया, क्योंकि आत्मनिष्ठ भगवद्भक्त की जहाँ-जहाँ दृष्टि जाती है वहीं २ अपना दर्शन पाता है। 'यत्र यत्र मनोयाति तत्र तत्र समाधय:'। जो आत्मनिष्ठ होना चाहते हैं वे साधक, भक्त, धर्मात्मा भी सर्वभूत हितेरता: होते हैं। उनके जीवन में दैवी सम्पदा की प्रतिष्ठा परमापेक्षित है अत: रामराज्य के अधिकारी होते हैं। उच्छृङ्खल काम का उनके जीवन में स्थान नहीं रहता।

भारतीय समाज में दो प्रकार की प्रवृत्तियाँ पाई जाती हैं। प्रथम—काम ही जिनके जीवन का लक्ष्य होता है उसे काम राज्य करते हैं। द्वितीय आत्मा ही जिनका जीवन सर्वस्व है उसे आत्म राज्य या रामराज्य कहते हैं। दोनों के जीवन में खाना, पीना, चलना, सोना, मरना और सन्तानोत्पत्ति देखे जाते हैं परन्तु एक का लक्ष्य विषयभोग है तो दूसरे का आत्म सुख। प्रथम के जीवन में उच्छृङ्खल समाज शोषक काम प्रवृत्तियाँ पाई जाती है तो द्वितीय में धर्म नियन्त्रित शास्त्रीय समाज सुख कारक प्रवृत्तियाँ। इस तरह प्रथम 'क्षयाय़ जगतो हिता:' (गीता १६/६) के अनुसार अपना तथा जगत् के हित का क्षय करने वाले होते हैं। ऐसी प्रवृत्ति से स्वयं को बचाना, प्रत्येक व्यक्ति का कर्त्तव्य है। इसके अतिरिक्त धर्म तथा शास्त्र नियन्त्रित सर्वकल्याणकारी प्रवृत्तियों को पालना चाहिये। 'आत्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति' के अनुसार आत्मकल्याण के लिये धर्म और ब्रह्म को प्रमाण मानकर भगवदुन्मुखी बुद्धि, तदनुसार मन, तदनुसार इन्द्रियों की वैधानिक शास्त्रीय सुख में प्रवृत्ति होनी चाहिये। क्योंकि चित्त को चिदाकाश के अनुरूप बनाना चाहिये। श्री स्वामी जी प्रत्येक भारतवासी के जीवन में ऐसे रामराज्य को लाना चाहते थे।

श्री स्वामी जी सच्चे सनातन धर्मी पञ्चदेवोपासक थे। उनकी दैनिक दिनचर्या उपासना से ओत प्रोत देखी जाती थी। विशेष-विशेष पर्वो पर तत्तत् देवता की विशेष आराधना करते थे जैसे गणेश चतुर्थी, शिवरात्रि, ऋषि पञ्चमी, रामनवमी तथा श्रीकृष्ण जन्माष्टमी आदि। वे कहते थे—

असारे खलु संसारे सारमेतच्चतुष्टयम्।
काश्यावास: सतां संगो गंगाम्भ: शिवपूजनम्॥

अर्थात् इस नि:सार संसार में काशीवास, सत्संग, गंगाजल और भगवान् शंकर की पूजा चार ही सार वस्तु हैं। जैसा कहते थे वैसी प्रीति उनके जीवन में देखी जाती थी।

आपने सनातन धर्म का मार्ग दर्शन कराने वाले कई ग्रंथ रत्न लिखे। राजनीति कैसी हो? 'विचार पीयूष' तथा 'रामराज्य और मार्क्सवाद' ग्रंथ लिखकर मार्ग दर्शन किया। 'चातुर्वर्ण्य विमर्श:' लिखकर वर्णाश्रम की पुष्टि की तथा 'भक्ति रसार्णव:' एवं भक्ति-सुधा आदि अनुपम ग्रंथ रचना की। 'वेदार्थ पारिजात' के दोनों खण्ड उनकी अमर कृतियाँ हैं जो युग-युग तक सनातन धर्म प्रेमी जनता को धर्म और ब्रह्म की प्रेरणा देती रहेंगी।

●●

पूज्य श्री की असम्भव-पूर्ति

—पूज्यपाद आचार्य श्री भागवतानन्द सरस्वती जी महाराज,
परमार्थ आश्रम सप्त सरोवर हरिद्वार

जैसे अखण्ड, अचल हिमालय ताप से पिघलता है और पिघलकर गंगा की दिव्य धारा बन जाता है, अगणित सूखे खेतों में पहुंचते ही सरस धन-धान्य परिपूर्ण कर देता है। इसी प्रकार अखण्ड, अद्वय सच्चिदानन्दघन स्वरूप ज्ञान ही भवाटवी में भटकते श्रान्त, क्लान्त पथिकों के भवताप संतप्त हृदयों को देखकर पिघलता है और गंगा की अच्छल धारावत् 'चल' बनकर उन्हें जीवनदान देता है। उसे ही हम सद्‌गुरु या सन्त कहते हैं।

जब हृदय में तीव्रतम जिज्ञासा जागृत होती है और उस जिज्ञासा को पूर्ण करने के लिये बेचैनी जगती है तो अन्तर्यामी प्रियतम हृदयेश्वर साकार प्रकट होकर उसकी जिज्ञासा को पूर्ण करता है, वही सन्त सद्‌गुरु है।

वेद, शास्त्र एवं धर्म के रहस्य को ठीक-ठीक परमात्मा ही समझता है। अतः जब इसमें अनर्थ होने लगता है तो वही परमात्मा साकार होकर उसकी रहस्य-ग्रंथि खोलकर समाज में रखता है। चाहे वह बौद्ध, जैन से प्रपीड़ित काल में शंकराचार्य को ले लें, चाहे वर्तमान में नास्तिकों से प्रपीड़ित धर्मसम्राट् अपने पूज्य स्वामी जी महाराज को ले लें। पूज्य श्री महाराज जी में भगवदीय समस्त गुणों का एक साथ प्राकट्य देखने में मिलता रहा है। बहुत बचपन से ही श्री चरणों में सत्संग करने का सौभाग्य मिलता रहा है। अथाह, अतल जलधि में गहराई तो भला पाने का कौन दुस्साहस करेगा तथापि 'नभः पतन्त्यात्मसमः हि पतत्रिणः' वत् मैं भी कुछ प्रतिपादन कर वाणी पवित्र करना चाहता हूं। 'अथावाच्यः सर्वः स्वमति परिणामविधिगृणन्' को दृष्टि से कुछ लिखने का साहस कर रहा हूं।

'सत्' शब्द के 'सन् साधौ धीरशास्त्रयोः मान्ये सत्ये विद्यमाने इस मेदिनी कोश के आधार से अनेक अर्थ होते हैं। किन्तु सत् शब्द का अर्थ सन्त या साधु पुरुष में विवक्षित है।

'असन्नेव सम्भवति असद्‌ब्रह्मेति वेद चेत्।
अस्ति ब्रह्मेति चेद् वेद सन्तमेनं ततो विदुः॥'

अर्थात् त्रिकालाबाधित ब्रह्म 'मैं' आत्मस्वरूप चेतन हूँ—इस विज्ञान को उपलब्ध करने वाला ही सन्त है, सन्त तो भगवान् का स्वरूप है। इसलिए उसका कोई लक्षण नहीं किया जा सकता। जो सर्व है, सर्व से अलग भी है, जिसमें सर्व का भाव और अभाव दोनों प्रतीत हो रहा है, वही सर्वाधिष्ठान स्वरूप सन्त है। इस अर्थ की दृष्टि से पूज्यपाद धर्मसम्राट् यतिचक्र चूड़ामणि करपात्री जी महाराज में पूर्ण अर्थ चरितार्थ है।

क्रमशः उनमें विशेषताएँ जैसी और जितनी मुझ अल्पज्ञ को दिख सकीं उनको लिखकर वाणी पवित्र कर रहा हूँ।

प्रायः ऐसा देखा जाता है कि व्यक्ति की रुचि प्रभुप्रीति या राजनीति—दोनों में से एक

में ही होती है । किन्तु एक तरफ उनके द्वारा विरचित 'रामायण-मीमांसा' 'वेदों को अपौरुषेयता और परम प्रामाण्य,' 'पारिजात' आदि ग्रंथ हैं तो दूसरी ओर 'मार्क्सवाद रामराज्य' को देखने में बड़ा विस्मय होता है । गोवध-आन्दोलन, धर्म-संघ की स्थापना, रामराज्य परिषद् की स्थापना से असंख्य धर्म-संस्थाओं के प्राण-स्वरूप पूज्य श्री महाराज जी की सर्वतोमुखी प्रतिभा लक्षित होती है ।

अद्‌भुत पाण्डित्य के साथ-साथ अद्‌भुत सारल्य, अद्‌भुत ब्रह्मनिष्ठा के साथ-साथ अद्‌भुत उपासना की निष्ठा एक साथ उनकी विशेषता दिखाती है ।

परम श्रद्धेय पूज्य 'श्री स्वामी जी महाराज पीताम्बरापीठ दतिया' के पास भी आप गये थे। तन्त्र-विद्या का एक बहुत प्रसिद्ध ग्रंथ 'श्री विद्या रत्नाकर' की रचना की, जिसे देखकर आपके तन्त्र-शास्त्र में अथाह ज्ञान का परिचय मिलता है । उपासना, निष्ठा तो मैंने अपने जीवन में आज तक ऐसी किसी में नहीं देखी है । अद्वैत वेदान्त-तत्व मर्मज्ञ होते हुये भी उनकी उपासना को निकट के लोग ही जान सकते हैं।

अदम्य साहस, अथक-परिश्रम, विजितेन्द्रिय, गुडाकेश रूप में उनको देखने से साक्षात् भगवान् शंकर के दर्शन होते थे । सहज वैराग्य उनके जीवन के अन्त तक रहा । श्री मद्‌भागवत माहात्म्य में भक्ति, ज्ञान, वैराग्य का मूर्त रूप में वर्णन आया है । मुझे भक्ति, ज्ञान, वैराग्य—तीनों एक साथ ही उनमें साकार दिखाई देते थे ।

ज्ञान-गंगा, भक्ति'यमुना, सत्कर्म सरस्वती की त्रिवेणी को उनकी लेखनी ने जैसा बताया है वैसा विद्वत्‌जनों से छिपा नहीं है । मुझे तो विशेष रूप से उनकी अध्यापन शैली देखने को मिली है। कथा भी सुनने को मिली है। बहुत साधारण पढ़े लिखे लोगों को उन्हीं की साधारण भाषा में उन्हें समझाते हुये भी देखा है। कैसा ही विचित्र समन्वय आपके जीवन में था—यह वाणी वर्णन नहीं कर सकती । जैसे गन्ने का रस, मिश्री, गुड़-आदि में मधुरता एक सी है तथापि बोलकर उनकी माधुर्य-पृथकता बताई नहीं जा सकती वैसे ही उनमें विशेषताओं को जानते हुये भी लिखने में वाणी असमर्थ सी है ।

एक स्वाभाविक उक्ति उनमें चरितार्थ होती दिखाई देती है, जैसा कि किसी कवि ने कहा है।

मनसि वचसि काये पुण्यपीयूषपूर्णाः,
त्रिभुवनमुपकारश्रेणिभिः प्रीणयन्तः ।
परगुणपरमाणून् पर्वतीकृत्य नित्यम्,
निजहृदि विकसन्तः सन्ति सन्तः कियन्तः ।।

दर्शनशास्त्र, धर्मशास्त्र, भक्तिशास्त्र, तन्त्रशास्त्र, राजनीतिशास्त्र आदि विविध शास्त्रों का अतल ज्ञान उनमें प्रतियोगितापूर्वक देखा गया है । मेरी समझ से ऐसे विद्वान् सन्तप्रवर, करनी, कथनी, रहनी में एक से महात्मा, ज्ञान, वैराग्य भक्ति की मूर्ति रूप में अब कोई दूसरा उनका जैसा मिलना असम्भव है । मैं प्रेमाश्रुओं से उनके चरणों में श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता हूं और प्रेमियों से अनुरोध करता हूं कि उनके बताए हुये मार्ग पर चलें, उनकी कृतियों का मनन करें तो वे आत्मरूप से सबमें विराजमान् होते हुये सतत् शान्ति प्रदान करते रहेंगे ।

ज्ञान-भक्ति-कर्म की त्रिवेणी

—पूज्यपाद १००८ श्री शङ्करानन्द सरस्वती जी महाराज,
परमार्थ निकेतन सप्त सरोवर हरिद्वार

३० वर्ष पूर्व प्रातः स्मरणीय गुरुदेव (श्री १०८ स्वामी अखण्डानन्द जी सरस्वती वृन्दावन) के प्रसन्न मुखारविन्द से निकली गम्भीर भावापन्न श्रद्धासम्पन्न पावन वाणी को सभा में सुना— **'धर्म-अधर्म का मर्म जैसा पूज्य करपात्री जी जानते हैं मेरी दृष्टि में वैसा दूसरा कोई नहीं'।** यही वाक्य गुरुदेव ने एक बार व्यक्तिगत रूप में मुझसे एकान्त में भी कहा। तभी से मेरे हृदय में पूज्यपाद (करपात्री जी महाराज) के प्रति श्रद्धा हो गयी। प्रथम तो उनके द्वारा लिखित 'वेदप्रमाण्य मीमांसा' 'वेदस्वरूप विमर्श' 'वेदों की अपौरुषेयता तथा प्रामाण्य' 'मार्क्सवाद और रामराज्य' 'भक्ति सुधा' आदि ग्रंथों का अध्ययन किया। इससे पूज्यपाद की अलौकिक प्रतिभा से प्रभावित होकर मैं उनके दर्शन, सत्संग का अवसर खोजने लगा।

प्रयास करने पर एक दो बार अल्पकाल के लिए अवसर मिला, परन्तु उतने से मुझे सन्तोष न हुआ। अध्ययन का व्यसन होने के कारण २० वर्ष तक दर्शन शास्त्रों का तथा श्रुति-स्मृति-इतिहास-पुराणों का अध्ययन-मनन-परिशीलन करता रहा। शङ्कालु स्वभाव के कारण इन सभी ग्रंथों के अध्ययन काल में सैकड़ों शंकाओं का उदय हृदय में हुआ, उन्हें लिखता गया।

दैवयोग से पूज्यपाद का सुयोग प्राप्त हुआ। मेरी प्रार्थना सुनकर प्रातः १० से ११॥ तथा सायं ६ से ७ बजे तक विचार का अवसर उदार हृदय से दिया। ४० घण्टे विचार विमर्श सभी प्रश्नों पर हुआ। विषयान्तर का सञ्चार न करना और न होने देना आदि व्यवस्थित विचार शैली के कारण जितना कार्य एक घण्टे में पूज्यपाद कर देते थे, उतना कार्य १० घण्टे में भी अन्य विद्वानों से नहीं होता था। पूज्यपाद के सम्मुख उक्त श्रुति-स्मृति आदि तथा इनके भाष्यों से सम्बन्धित जो जो प्रश्न उपस्थित किये, उनका उत्तर प्रायः ग्रंथ का प्रकरण देखे बिना ही दे देते थे। वह उत्तर ऐसा सदुत्तर होता था कि अन्य विद्वान् ग्रंथ का पूर्वापर प्रकरण देखकर भी वैसा सदुत्तर नहीं दे सके। बीच-बीच में जो यौक्तिक आपत्ति उठाता था, उन्हें प्रबल युक्ति से काट कर ऐसी समुचित सङ्गति बता देते थे कि चित्त चकित होकर विचित्र आनन्द का अनुभव करता था।

प्रायः विद्वानों का एक एक दर्शन पर ही अधिकार होता है, परन्तु पूज्यपाद का आस्तिक नास्तिक सभी दर्शनों पर पूर्ण अधिकार था। वर्तमान में दर्शन मर्मज्ञ प्रायः स्मृति-इतिहास-पुराणादि की उपेक्षा करते हैं, इसलिए इनके मर्म से अनभिज्ञ होने के कारण इन ग्रंथों से सम्बन्धित प्रश्नों का उत्तर नहीं दे पाते। मेरे पूज्यपाद तो जैसे सर्वदर्शन मर्मज्ञ थे वैसे ही इतिहासादि के भी मर्मज्ञ थे। दर्शनशास्त्रों की तरह ही पुराण-इतिहासादि आर्षग्रंथों के प्रति समादर था। अतः इतिहासादि सम्बन्धित मेरे प्रश्नों का भी सदुत्तर तत्काल दे देते थे। इससे मुझे बहुत सन्तोष हुआ।

पूज्यपाद केवल सर्वशास्त्र मर्मज्ञ ही नहीं थे किन्तु तन्निष्ठ भी थे। उनका जीवन ज्ञान-भक्ति-कर्म की त्रिवेणी था। देखिये—

ज्ञाननिष्ठा—भगवान् शंकराचार्य के प्रस्थानत्रय में से पचासों प्रश्न जब मैंने उनके सामने उपस्थित किए तो प्रायः ग्रंथ देखे बिना ही अनुभव युक्त जो सदुत्तर उन्होंने दिए, उससे तो ऐसा लगता था कि स्वभाष्य संरक्षण के लिए मानो आद्यशंकराचार्य ही पूज्यपाद के रूप में प्रकट होकर उत्तर दे रहे हैं। यद्यपि प्रायः शांकरवेदान्त का ही समर्थन करते थे तथापि श्री रामानुजाचार्य आदि के वेदान्त सिद्धान्त का भी हृदय से समादर करते थे। क्योंकि एक बार प्रसंगानुसार मुझसे कहा कि '**सभी आचार्य देवताओं के अवतार थे, अतः सभी के सिद्धान्त समादरणीय हैं**'। विचार (ज्ञान) का तो इतना समादर करते थे कि मुझ आस्तिक को नास्तिक जैन के 'न्यायकुमुदचन्द्र' ग्रंथ के अध्ययन का आदेश दिया। निष्पक्षभाव से विचार का हृदयागार में समादर होने के कारण ही आस्तिक-नास्तिक सभी के विचार प्रधान ग्रंथों का गम्भीरता से उन्होंने अध्ययन किया। अतः जब जिस दर्शन का प्रतिपादन करते थे तब उस दर्शन के विशेषज्ञ प्रधानाचार्य भी आश्चर्य चकित हो जाते थे। भूरि भूरि प्रशंसा करते थे।

भक्तिनिष्ठा—मैंने निकट से देखा है कि परमज्ञानी होकर भी अज्ञानी की तरह पूर्ण निष्ठा से प्रायः आठ बजे तक स्तोत्रपाठ, शिवाभिषेक, धूप दीपादि से पूजन, करते। पुनः मध्याह्न तथा रात्रि में भी पूजन करते। २४ एकादशी निर्जला व्रत करते। दशावतार की जयन्तियों में तथा अन्य मुख्य मुख्य व्रतों में उपवास करते। श्रीमद् भागवतादि ग्रंथों में से जब भगवल्लीला का ललित-भाव से प्रतिपादित करते हुये लीला रस में लीन होकर आनन्दाश्रु बहाते थे, तब वृन्दावन-अयोध्या आदि के भक्त सन्त भी पूज्यपाद को भक्तिनिष्ठा सम्पन्न महान् भक्त कहने तथा मानने के लिए विवश हो जाते।

कर्मनिष्ठा—धर्म कर्म में तो उनकी ऐसी निष्ठा थी कि अनेकों कष्टों को सहकर भी उन्हें पालन करते थे। ब्राह्मण के हाथ का ही बना भोजन २४ घण्टे में एक बार ही करते, दुबारा दूध फलादि भी नहीं लेते थे। ४० वर्ष पर्यन्त नमक-मीठा नहीं खाया। मरणासन्न हो जाने पर भी आयुर्वेदीय औषधि का ही सेवन किया, अंग्रेजी दवा नहीं ली। मार्ग में पीपल, गाय आदि के आने पर प्रणाम करते। सनातन धर्म एवं जनताजनार्दन की सेवा रूप कर्म में पूरा जीवन लगा दिया। इसके लिए जेलों में असह्य यातनायें सहीं। ऐसी थी उनकी अचल कर्मनिष्ठा।

इस प्रकार पूज्यपाद के जीवन में ज्ञान-भक्ति-कर्म रूप त्रिवेणी की धार लगातार बहती थी। ऐसा मैंने निकट से प्रत्यक्ष देखा है। जिन लोगों को प्रत्यक्ष देखने का अवसर नहीं मिला उन्हें वेदार्थ पारिजात में ज्ञाननिष्ठा, रामायण-मीमांसा में तथा भक्तिसुधा में भक्तिनिष्ठा, और चातुर्वर्ण्य-संस्कृति विमर्श में कर्मनिष्ठा देखने को मिलेगी। त्रिवेणी रूप पूज्यपाद के वचनों की स्मृति तथा स्मृति रूप उनके ग्रंथ ही अब एकमात्र मेरे आधार हैं। जिन्होंने मेरी सैकड़ों शंकाओं का समाधान किया उन पूज्यपाद की स्मृति सदा मेरी रक्षा करे, बस यही प्रार्थना है। ●●

मेरे भगवान् श्री स्वामी करपात्री जी

—पूज्यपाद १००८ श्री परमहंस स्वामी वामदेव जी महाराज,
तरनतारन रोड, अमृतसर (पंजाब)

विक्रम सम्वत् २००२ बैशाखमास में उज्जयनी नगरी के कुम्भ मेला में सम्मिलित होने हेतु भिन्न भिन्न प्रदेशीय अनेक सन्त महात्माओं का आगमन हुआ। कुछ परिव्राजक लालपुल के समीप शिप्रा तट पर आम्रादि वृक्षावली के मध्य स्थित थे। मैं भी एक आम्र वृक्ष के नीचे आसन लगाये था। वैसे तो हम एक मास पूर्व पहुंच गये थे। परन्तु बैसाख मास के प्रारम्भ में अनेक प्रसिद्ध सन्त महात्माओं की चर्चा होने लगी। म० म० नृसिंह गिरि जी. म० म० कृष्णानन्द जी आदिक विद्वानों के प्रवचन होने लगे। उदासीन म० म० गंगेश्वरानन्द जी महाराज के पण्डाल में तो इसलिये अधिक आकर्षण था कि वे प्रज्ञा चक्षु होते हुये भी वेदमन्त्र का प्रमाण देते हुये उसके मण्डल सूक्त तथा मंत्र संख्या भी प्रस्तुत करते थे। वेदमंत्र प्रस्तुत करते समय उनकी यह वाक्यावली, बड़ी आकर्षक थी कि "नोट करो यह मन्त्र अमुक मण्डल अमुक सूक्त तथा अमुक क्रम संख्या का है"।

उपरोक्त विद्वानों का शास्त्रानुसार सनातन धर्म के सिद्धान्तों का निरूपण अत्याकर्षक था। इस बीच बैसाख मास का स्वल्प समय बीत गया, स्वामी करपात्री जी अभी नहीं आये थे। महाकाल भगवान् के मन्दिर में हरिजन प्रवेश होगा, यह समाचार मेले में बहुचर्चित था। कुछ कहते, यह उचित नहीं। कुछ कहते, जब भगवान् सर्व के हैं तथा भगवान् के सर्व हैं तो भगवान् के मन्दिर में सर्व का प्रवेश क्यों नहीं? यह आक्षेप मृदुमतियों के हृदय में ऐसा गृह करता था कि मानो वह, परम्परागत व्यवस्थित मूर्ति दर्शन के सिद्धान्त को उखाड़ फेंकेगा।

प्रथम दर्शन

उपरोक्त आक्षेप के समाधान की जनता में बहुत प्यास थी। एक समाचार बिजली की तरह कोंधा। वह यह कि स्वामी करपात्री जी महाराज आ रहे हैं। मेरे संन्यास का समय अभी ६ वर्ष का था। पुनरपि गुरुजनों की सेवा शुश्रूषा में रत रहने के कारण सन्तों से विशेष सम्पर्क न था। अनेक देश अनेक वेष तथा सम्प्रदायों के सन्तों के सम्पर्क का यह प्रथम अवसर था। महाकाल में हरिजन प्रवेश को लेकर बहुचर्चित यह महान् कोई देवता है या अवतार। तद्विषयकचर्चा से ऐसा प्रतीत होता था कि परम्परागत व्यवस्थित मूर्ति दर्शन का, तद्विषयक शंका कलंक से उद्धार करने का उत्तरदायित्व उसी पर है। पुन: एक दिन समाचार मिला कि स्वामी जी पधार गये हैं, महाकालेश्वर भगवान के मन्दिर के सामने क्षीर सागर के विस्तृत प्रांगण में व्याख्यान होंगे। उत्सुकता अधिक होने के कारण, दूर होने पर भी सभा के समय से पूर्व ही हम भी जा पहुँचे। महाराज श्री दण्ड को हस्त में ग्रहण किये, ब्रह्मचारी मार्कण्डेय एवं अन्य विद्वानों के साथ सभा में आ स्थित हुए। यहाँ ही हमारा प्रथम दर्शन हुआ।

प्रथम व्याख्यान

महाराज श्री के प्रथम व्याख्यान का विषय महाकाल भगवान् के मन्दिर में अछूतों का प्रवेश था। जिसका व्याख्यान वक्ष्यमाण प्रकार से किया। मनुष्य के शरीर की भगवत्स्मरण एवं धार्मिक जीवन बिताना ही विशेषता है। भारत में भी उज्जैन से अधिक सुन्दर नगर हैं। शिप्रा से भी सुन्दर जल वाले नद नदी हैं। महाकाल के मन्दिर से भी सुन्दर मन्दिर हैं। परन्तु प्रश्न होता है कि यदि ऐसा है तो पुनः यह विशाल जनसमुदाय सो भी दूर दूर से द्रव्य व्यय करके यहाँ क्यों आया है? इसका यही तो उत्तर देना होगा कि हिन्दु शास्त्र यहाँ इस वर्ष इस मास में उज्जयिनी नगरी के निवास महाकाल के दर्शन तथा शिप्रा के स्नान का बहुत पुण्य बता रहे हैं, अतः जनता यहां एकत्रित हुई है। प्रश्न यह होता है कि जब भगवान् सर्व का है तब मन्दिर में प्रविष्ट हो हरिजनों को पूजा करने का अधिकार क्यों नहीं? फिर तो यह भी एक प्रश्न किया जा सकता है, जब भगवान सर्व का है तो मसजिद में हिन्दुओं को शंखादि बजाकर पूजा करने का अधिकार क्यों नहीं? यदि कहा जाये कि कुरान-शरीफ के अनुसार ही मसजिद में पूजा की जा सकती है, तब तो हमारा भी उत्तर यही है कि मन्दिर में भी हिन्दू शास्त्रों के अनुसार ही प्रविष्ट होकर पूजा की जा सकती है। जो हिन्दू शास्त्र को माने वह हिन्दू। हिन्दू होते हुये भी हरिजनों पर कार्य भार अधिक होने के कारण मन्दिर में प्रवेश करके उनको पूजा करने का विधान हिन्दुशास्त्र में नहीं। अपितु ब्राह्मणादिकों को षोडशोपचार पूजा करने से जो पुण्य होता है, वही पुण्य हरिजन को शिखर दर्शन मात्र से प्राप्त हो जाता है। पुण्य दृष्टि से प्रवेश की आवश्यकता तथा उनके साथ पक्षपात भी नहीं। अतः मन्दिर प्रवेशादि के प्रेरक विद्रोह की भावना उत्पन्न कर अपना स्वार्थ सिद्ध करते हैं। ऐसे कार्यों से धार्मिक भावना विनष्ट होती है धार्मिक भावनाओं के नष्ट होने पर मन धर्मांकुश से विहीन हो जायेगा। मानव के मन के धर्मांकुश से विहीन होने पर तो एक-एक व्यक्ति के लिये एक-एक पुलिसमैन नियुक्त कर दिया जाये तब भी उचित मार्ग पर नहीं चलाया जा सकता। स्वामी जी के उपरोक्त वचन सत्य होने जा रहे हैं।

उपरोक्त वक्तव्य से सहस्रों मनुष्यों की जिज्ञासा शांत हुयी। सभा की समाप्ति में दण्ड ग्रहणकर सभा मण्डप से उतरते हुये स्वामी जी साक्षात् नारायण प्रतीत हो रहे थे। जैसा कि शास्त्र में लिखा है, "दण्ड ग्रहण मात्रेणनरोनारायणो भवेत्"। उस समय मैं भी स्वामी जी को भावभीनी दृष्टि से देख ही रहा था, एक सज्जन ने प्रेम से स्वामी जी के चरणों में नतमस्तक हो "अहह मेरे भगवान् श्री स्वामी जी" कहकर नमस्कार किया। हम मृदुमति स्वामी जी की बुद्धि प्रखरता का वर्णन तो क्या धर्मविरोधिदुरुहकुतर्क उनके प्रवचन से शमन होने से ही कुछ अनुमान करते हैं।

शास्त्र चिन्तन

कुम्भ मेला प्रयाग में सम्वत् १६२२ के अवसर पर इतस्ततः से परिव्राजक एकत्रित हुए। हम भी नीमीग्राम के बाग में लगभग १५० परिव्राजकों के मध्य ठहरे थे। "यहाँ विचार चला कि गुरु मुख से उच्चरित महावाक्य रूप प्रमाण से अहं ब्रह्मास्मि ऐसा उत्पन्न बोध प्रमा रूप है। तथा अपरोक्ष

भी है। परन्तु घटादि विषयक प्रत्ययों अथवा सुषुप्ति से व्यवहित अहं ब्रह्मास्मि यह प्रत्यय पूर्व प्रमारूप ज्ञान जन्य संस्कारों से उत्पन्न होने से प्रमारूप नहीं। स्मृति रूपता सम्भव है। स्मृति अपरोक्ष नहीं होती यह वृत्ति अपरोक्ष है। अतः यह प्रत्यय किंरूप है''। मैं भी इस जिज्ञासा को लेकर कई विशिष्ट विद्वानों के समीप गया पुनरपि कोई उचित समाधान न मिला। श्री स्वामी जी महाराज के आगमन की प्रतीक्षा करता रहा। एक दिन स्वामी जी के आगमन का श्रवण कर गया तो देखा अभी वहाँ कोई प्रबन्ध नहीं। स्वामी जी की मोटर ही उनकी कुटिया थी। देखते ही कहा क्या जिज्ञासा है। जिज्ञासा के प्रस्तुत करते ही कहा कि यह ज्ञान तो स्मृति रूप है। यह प्रत्यक्ष विषयक कैसे? इस पर कहा कि जिस प्रकार शाब्दबोध परोक्ष विषयक ही प्रायः होता है। पुनरपि सन्निहित विषयक शाब्दबोध अपरोक्ष विषयक होता है, तथैव आत्मविषयक स्मृति ज्ञान भी अपरोक्ष होता है। पुनः तत्वानुसंधान ग्रंथ से भी यही बात प्रमाणित हो गयी।

विशेषता

स्वामी जी की यही विशेषता थी कि वे प्रश्न का उत्तर शास्त्रसम्प्रदाय से देते थे। उपरोक्त प्रश्न के सम्बन्ध में एक विद्वान ने कहा कि प्रबल प्रमाण तत्वमसि आदि महावाक्य से उत्पन्न यह ज्ञान नष्ट ही नहीं होता, अतः प्रमारूप है स्मृति रूप नहीं। अन्यों ने भी अन्य कुछ। परन्तु उचित समाधान प्रतीत न हुआ। स्वामी जी ने शास्त्र संमत समाधान दिया। तत्वानुसंधान ग्रंथ में इसका विचार किया है। इससे यह व्यक्त हुआ कि स्वामी जी का वेदान्त के उन सस्कृत ग्रंथों का भी गम्भीर स्वाध्याय था जो आचार्य तक पठनपाठन में प्रचलित नहीं हैं। अपने को धार्मिक मानने वाले भी विद्वान् पुराणेतिहासों में मांस के प्रकरणों को यवन काल में प्रक्षिप्त मानते हैं। परन्तु स्वामी जी की यह विशेषता थी कि वे शास्त्र को सहसा प्रक्षिप्त नहीं मानते थे। मैंने जब महाभारत पढ़ा उसमें अनेक स्थलों का विवेचन नीलकंठ जी महाराज ने महाभारत की टीका में प्रस्तुत किया है। परन्तु उसमें एक प्रसंग राजा रन्ति देव का आया, जिसमें उसके रसोईघर में दो सौ गौमांस का भोजन ब्राह्मणों के लिये बनना लिखा है। उस पर नीलकंठ जी ने कुछ नहीं लिखा। मेरे हृदय में ऐसा भाव तो नहीं आया कि यह प्रक्षिप्त है तथापि चित्त में गोमांस भोजन की बात बहुत ही खटकती रही। स्वामी जी महाराज का इस सम्बन्ध में अद्भुत चिन्तन देखने को मिला, जिसे उन्होंने अपने वेदार्थ पारिजात ग्रंथ में भी लिखा है। स्वामी जी का कहना है कि गो शब्द का अर्थ वहाँ गो का दुग्ध है। क्यों वेद के गोभिः शृणीत इस वाक्य में 'गो' शब्द का अर्थ दुग्ध है। तथा मांस शब्द का अर्थ घनीभूत पदार्थ है। चिकित्सा शास्त्र में कुमारिका (ग्वारपाठा) औषध के गूदे के लिये एक प्रस्थ 'कुमारिका मांसम्' इस वाक्य में मांस शब्द का प्रयोग हुआ है। अतः महाभारत के इस कथा का अर्थ है कि रन्ति देव के यहाँ २०० गौओं के दुग्ध का घनीभूत पदार्थ खोआदि से निर्मित पदार्थ ब्राह्मणों के लिये बनते थे। प्रश्न होता है स्पष्ट ही ऐसा क्यों नहीं लिख दिया? इस पर महाराज का कथन है कि महाभारत के आदि में यह प्रसंग है :—व्यास जी को लेखक की आवश्यकता होने पर गणेश जी लेखक बने तो उन्होंने समय किया

कि मेरी लेखनी का अवरोध न हो ! तो व्यास जी ने कहा कि आप बिना समझे न लिखें। अतः जब लेखनी के रुकने की सम्भावना होती थी तो व्यास जी कूट श्लोक बोल देते थे किंचित् समझने में विलम्ब होने पर तुरन्त आगे श्लोकों का निर्माण कर लेते थे। इस कारण से ही महाभारत में ८८०० कूट श्लोकों का वर्णन है। यह श्लोक भी ऐसे ही समय का कूट श्लोक है।

धर्म विरोधी आक्षेपों लेखों के उत्तर देने हेतु स्वामी जी का यश देश-विदेश व्यापी था। अत्यन्त यशस्वी पुरुषों से जनसाधारण का साक्षात्सम्बन्ध न होना स्वाभाविक है। ऐसे प्रतिभावान यशस्वी पुरुष का यदि राज्य सत्ताधारी पुरुषों के विचारों से विरोध हो, राज सत्ताधारी भी वे जो अनपढ़ अथवा लोक शास्त्र राजनीति के पारंगत न हों, ऐसे लोगों के चुने हुये हों; उन राज सत्ताधारियों के पास प्रतिभा न होने के कारण वे प्रतिभावानों का मिथ्या अपयश करके ही अपना महत्व रख पाते हैं। भारत के प्रायः राजनीतिज्ञों ने यही मार्ग अपनाया। अतएव स्वामी जी के उपदेशों से जनसाधारण ने लाभ नहीं उठाया। परिणाम जो हुआ वह सामने है। मानव, धर्म के अंकुश से शून्य होकर अनाचार भ्रष्टाचार में ग्रस्त हो गया है। राजनैतिक नेताओं की संकीर्णता पदलोलुपता अदीर्घदर्शिता के कारण अपने ही देश में हिन्दू परिवार नियोजन तथा हिन्दूकोड जैसे बिल और विधानों के अपनाने व लादने से अल्प संख्यक होने की दिशा में जा रहा है।

अन्यथा प्रचार के कारण ही भारत का सन्त समाज भी स्वामी जी से दूर रहा। परन्तु प्रथम दर्शन काल से ही स्वामी जी के धार्मिक उपदेश धर्म के प्रति सजगता शास्त्रनिष्ठा आदिक गुणों से प्रभावित होने से मैं स्वामी जी के समीप जाता रहा। क्योंकि मैं मिथ्या प्रचार से प्रभावित नहीं था। स्वामी जी में सर्व के प्रति स्नेह एवं सरलता थी। शास्त्रनिष्ठ होने से शास्त्र की बात कहने में कोई संकोच न था। मैं दण्डी स्वामी न था न कोई यशस्विव्यक्ति, फिर भी स्वामी जी मुझसे स्नेह करते थे। यहाँ तक कि स्वामी जी ने दुर्गायन्त्र के पूजन का विधान भी मुझे प्रदान किया। कोई हरिजन भी आकर धर्म विषयक प्रश्न करे तो उसे सयुक्तिक तथा सप्रेम उत्तर देते थे। शास्त्र विहित धर्म की बात कहने में कोई संकोच न था। अतएव राजनैतिक, सामाजिक तथा धार्मिक नेताओं की असूया थी। अपनी असूया के आवरण हेतु उन नेताओं के नारे थे, एक संन्यासी को राजनीति से क्या प्रयोजन, स्वामी करपात्री तो पक्षपाती हैं, धर्म समय-समय पर बदलता है, शास्त्र किसी समय के लिए था, इत्यादि। भाव यह है कि स्वामी जी की प्रतिभा के सामने किसी की प्रतिभा सक्षम न थी, उपरोक्त नारों से ही राजनीतिज्ञों ने अपनी प्रतिष्ठा जीवित रखी थी। हिन्दू कोडबिल पर विचार करने हेतु ३०० राजनैतिक एवं सामाजिक नेताओं को आमन्त्रित, यह कहकर करना कि कोडबिल पर शास्त्र से नहीं युक्ति से विचार किया जाये कि वह देशहित में है या नहीं, यह उनकी विचारकता की उदारता की कितनी उज्ज्वल झांकी है। राज नेताओं का विचार के लिये उपस्थित न होकर उसे केवल हिन्दुओं पर थोपना दकियानूसी होने का स्वच्छ दर्पण है। आज जिस समय मैं यह लिख रहा हूँ एक बुद्धिमान मनुष्य ने कहा कि पंजाब में अशान्ति का कारण अंशतः हिन्दुकोडबिल भी है। क्योंकि उसका आश्रय लेकर पंजाब में बहुत से बहिन

भाइयों के जमीन जायदाद बाँटने के केस चल पड़े हैं। जिससे कि पारिवारिक अशांति उत्पन्न हो गयी है। इस बिल से बचने के लिए अल्प संख्यक की कोटि में आने हेतु कुछ धारायें भी संघर्ष का मूल बनी हैं। इस प्रकार के विशेष विचार में न जाकर मैं यही कहूँगा कि स्वामी जी में शास्त्र चिन्तन तदनुसार धर्मनिष्ठा, सरलता, सहज स्नेह तथा हिन्दुओं के भावी पतन पर दृष्टि को लेकर अनोखा वैशिष्टय (विशेषता) था। जिसे हमने नहीं अपनाया यही है भगवान् की अघटन घटना पटीयसी माया।

स्वामी जी का राजनैतिक, ज्ञान तथा विचारधारा।

हीगल, कान्ट, हाब्स तथा मार्क्स आदि पाश्चात्य विद्वानों से रचित राजनैतिक ग्रंथ तथा भारतीय अर्थशास्त्रों का स्वामी जी को कितना ज्ञान था, इसका अनुमान स्वामी जी रचित मार्क्सवाद और रामराज्य नामक ग्रंथ के अनुशीलन से ही लगाया जा सकता है। यह ग्रंथ अपनी विशेषता से अर्थशास्त्रियों का प्रिय बना, अतएव गोरखपुर प्रेस से हजारों की संख्या में छपा था। सन् १९६२ के चुनावों में स्वसंस्थापित रामराज्य परिषद् के घोषणा पत्र में कहा गया था कि गृहमन्त्रालय अर्थमन्त्रा-लय आदि की तरह से एक धर्म मन्त्रालय भी आवश्यक है। वह सभी सम्प्रदाय के व्यक्तियों को धार्मिक बनाने का कार्य करेगा। हिन्दू-मुसलमान, ईसाई आदिक सर्व सम्प्रदायों की धार्मिकनिष्ठा के प्रचार प्रसार के लिये इस विभाग का एक कोष भी होगा। हर सम्प्रदाय की जनसंख्या के अनुपात से उसका व्यय किया जाये। उनकी विद्वत्ता, यश तथा धर्मनिष्ठा के कारण जो लोग आज भी उनसे दूर हैं, उनको छोड़कर कौन ऐसा विचारक होगा जो स्वामी के हृदय में वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना को स्वीकार न करेगा। अतएव सनातन धर्म की कट्टरता के साथ पारसी, ईसाई तथा मुसलिमादि सभी सम्प्रदाय की धार्मिक भावनाओं के उत्थान का भाव उनमें था।

स्वामी जी अपने मन्च पर खुलेआम यह घोषणा करते थे कि "एक दीनदार ईमानदार मुसल-मान, बेदीन-बेईमान हिन्दू से अच्छा है" इस घोषणा से ही पता चलता है, उनका चरित्र के प्रति कितना सम्मान था। जहाँ वैदिक सनातन हिन्दू धर्म के कट्टर नेता थे, जिनकी कट्टरता को देख तथाकथित हिन्दू हितैषियों के हृदय भी दहल जाते थे, उनका यह उद्घोष कोई अर्थ रखता है। उनकी यही उदार राजनैतिक विचारधारा थी। चरित्रवान हिन्दू तथा मुसलमान एक दूसरे का हित करते हुये शान्त रह सकते हैं। किसी मुसलमान ने जो कट्टर मुस्लिमलीग जैसी पार्टी का हो, यह घोषणा नहीं की कि दीनदार ईमानदार हिन्दू बेदीन बेईमान मुसलमान से अच्छा है। स्वामी जी की उपरोक्त उदारता होने पर भी मुसलमान नेताओं ने उनका साथ नहीं दिया। अतः हम तो इस निर्णय पर पहुँचे हैं कि अपने जनसमुदाय की बुद्धि उससे हिन्दू धर्म तथा भारत की राजनीति पर हावी होने की भावनाओं ने मुस्लिम तथा ईसाई धार्मिक नेताओं को स्वामी जी की भावनाओं का सम्मान नहीं करने दिया। यदि इन नेताओं को भी सर्व के धर्मोत्थान तथा मानवमात्र के चरित्रवान् होने से प्रेम होता तो स्वामी जी के साथ संगठन भी अवश्य होना था। सत्ता पर बने रहने की क्षुधा वाले नेताओं को एक सम्प्रदाय को

बगल में लेकर – दूसरे सम्प्रदायों को धर्म निरपेक्षता के नाम पर दबाने का अवसर भी न मिलता। कुछ भी हो स्वामी जी का शास्त्र चिन्तन राजनैतिक ज्ञान तथा विचारधारा और तार्किक बुद्धि, अलौकिक एवं सर्व हितकारिणी थी। मानवमात्र के हितैषी स्वामी जी महाराज का पार्थिव शरीर अब नहीं है। जो मानो भगवान् की ज्ञान कला के अंश को लेकर इस कठिन समय में हिन्दू धर्म की आवाज सुनाने ही को इस संसार में आया था। उनकी धार्मिक उदारताओं से हर वर्ग वंचित रहा यह समय का ही दुर्भाग्य है। अन्त में यही कहना होगा कि "होइ है सोई जो राम रचि राखा" स्वामी जी की भव्यमूर्ति हमारे नेत्रों में सं० २००१ के उज्जैन कुम्भ के सभा स्थल में नमस्कार करते हुये व्यक्ति के—मेरे श्रीभगवान् स्वामी-जी ये उद्गार भरे शब्द हृदय में सदा ही झूमते रहेंगे।

धर्म की जय हो। अधर्म का नाश हो। प्राणियों में सद्भावना हो।
विश्व का कल्याण हो। गोवध बन्द हो। हर हर महादेव।

□□

'यह नहीं कहा जा सकता कि साइन्स के जरिए ऐसे ऐसे तत्वों का पता लगा है कि ईश्वर मानने की कोई आवश्यकता नहीं, पार्थिव, आप्य, तैजस तत्वों से ही सब काम चल जायेगा। क्योंकि रेलवे, तार, रेडियो, वायुयान, आदि को देखकर सहज प्रश्न होता हैं कि इसके बनाने वाले कौन हैं ? केवल जड़ प्रकृति के हलचल से या परमाणुओं से किंवा विद्युत्कणों से ये सब बन गए —यह उत्तर नहीं दिया जा सकता, न तो इतने उत्तरों से लोगों को सन्तोष ही होता है, किन्तु बहुत सी उपाधियों का पुंछल्ला लगाकर अमुक अमुक उपाधिधारी अमुक साहब ने इसका निर्माण किया—यह कहा जाता है। जब ऐसी बात है तो बीसवीं शताब्दी के जिन उत्पादक, पालक, संहारक महा महायन्त्रों को देखकर न्यूलाइट की चकाचौंध में लोगों की आंखें चमत्कृत हो उठती हैं, उन महा-महायन्त्रों के आविष्कारक मनुष्य के मस्तिष्क रूप यन्त्र का निर्माता कौन है ? सज्जनो ! इस पर यही कहना पड़ेगा कि कोई सर्वशक्तिमान परमात्मा ही है। उस परमात्मा से आप सब लोग प्रार्थना करें।

—करपात्र स्वामी

सतयुगी महात्मा श्री करपात्री जी

—ब्रह्मलीन जगद्गुरु शंकराचार्य श्री स्वामी कृष्णबोधाश्रम जी महाराज के विभिन्न अवसरों पर प्रगट उद्गारों से संकलित

"महात्माओं के वचनामृतों का पान कर उनका अनुष्ठान करो। औपनिषद प्राणमाहात्म्य की आख्यायिका के अनुसार व्यष्टिदेह की तरह समष्टिदेह में भी धर्म ही प्राण अर्थात प्रतिष्ठा है— 'धर्मो विश्वस्य जगतः प्रतिष्ठा।' धर्म ही सभी पुरुषार्थों का साधक है। हमारे नेतागण गाँव-गाँव में रेडियो, बिजली आदि की व्यवस्था द्वारा उनकी उन्नति करने की बातें बताते हैं, किंतु इस धर्म की ओर किसी का ध्यान ही नहीं जाता। देखो सत्य बात यह है कि यहाँ से आप हम सबको जाना है, यात्रा करनी है। सभी ऊर्ध्वगति चाहते हैं। एक धर्म ही उर्ध्वगति दे सकता है। व्यावहारिक वैषम्य का मूल भी धर्म ही है। आप धर्म की ग्रंथि (गांठ) बाँध लो तभी आप का यहाँ आना सफल होगा। अन्यथा 'महती विनष्टिः' होगी - यह निश्चय जानो। यह बात केवल कहने की ही नहीं, आपके पूर्वजों ने उसे करके दिखाया। विषमता के कारण सर्वप्रथम द्रौपदी गल गयी। फिर बुद्धि गर्व से सहदेव, ततः रूपगर्व से नकुल, पश्चात प्रतिज्ञाहानि से अर्जुन और तदनन्तर बलाभिमान से भीम गल गये, किंतु युधिष्ठिर ने किसी के पीछे नहीं देखा, अपना आदर्श नियतकर वे आगे ही चलते गये। आपको भी यही करना चाहिये। जब आप अपना लक्ष्य 'धर्म' बनाओगे, आदर्श सामने रखोगे, साथियों को लेकर चलोगे और पीछे कभी मुड़कर नहीं देखोगे तभी सफलता मिलेगी। स्वामी करपात्री जी उसी धर्म की जय मनाते हैं, उसी धर्म की प्रतिष्ठा चाहते हैं। वे समस्त विश्व का कल्याण मानते हैं। 'भवन्तु भद्राणि समस्त दोष ये भूतले ये दिविचान्तरिक्षे'—'अज्ञानिनो ज्ञानविदो भवन्तु ··· यथात्मने चाऽऽत्मनि।' —इस तरह जो सभी का कल्याण मनाते हैं, भला वे कैसे किसी की हानि सोच सकते हैं।"

'वास्तव में स्वामी करपात्री जी बड़े ऊँचे महात्मा हैं। वे सत्युगी महात्मा हैं उनके मन में सदा सत्संकल्प उठा करते हैं; सनातन वैदिक धर्म के संरक्षण हेतु उन्होंने सम्पूर्ण जीवन लगा रखा है। और देखो ! आप इन्हें जानते हो कि कौन हैं ? यह पुरबिये हैं, पुरबिये बड़े जिद्दी (दृढ़ संकल्प) होते हैं, धर्म रक्षा के कार्य में वे बड़ी दृढ़तापूर्वक लगे हैं, सनातन-शाश्वत वैदिक धर्म के सिद्धांतों के संरक्षण में अडिग हैं, बड़े कट्टर हैं। उत्साहपूर्वक धर्म कार्यों में एवं धर्म प्रचार में लगे हैं, इनके पास चाहे एक श्रोता आये अथवा लाखों की भीड़ समुपस्थित हो—धर्म प्रचार के कार्य के प्रति इनके अदम्य उत्साह में कोई कमी नहीं दिखलायी पड़ती। इस धर्म कार्य में सदा सहयोग देने का हमने करपात्री जी को वचन दे रखा है, वे धर्म के विषय में जैसा कहते हैं हम वैसा ही अनुगमन करते हैं - एक प्रकार से हम तो इनकी धर्मपत्नी हैं—ये धर्म कार्यों के बारे में जैसी आज्ञा करते हैं वैसा ही हम तो करते हैं।"

वे ब्रह्मविद वरिष्ठ उच्चकोटि के महात्मा हैं। ऐसे महात्मा के चरित्रचिन्तन लेखन से हृदय एवं लेखनी पवित्र होती है।
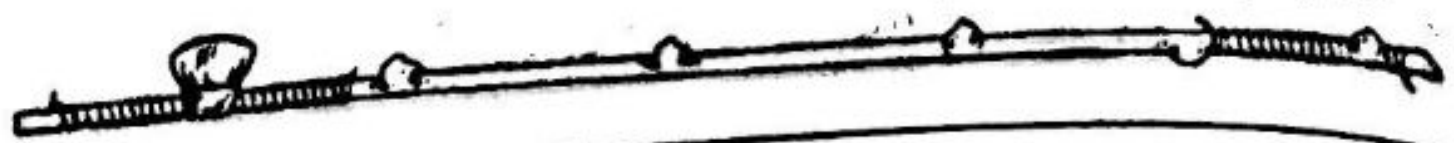
आयुर्वेदिक चिकित्सा के उपासक श्री स्वामी करपात्री जी और कायाकल्प

अनन्त श्री विभूषित श्रीमद्जगद्गुरु शंकराचार्य श्री स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती जी महाराज
ज्योतिष्पीठ, उत्तराम्नाय बद्रिकाश्रम हिमालय

श्री हरिः

पूज्य स्वामी करपात्री जी महाराज का वेदों, शास्त्रों पर अटूट विश्वास था, आयुर्वेद शास्त्र पर भी उनकी अनन्य निष्ठा थी। आयुर्वेद की ही औषधि का प्रयोग करते थे। एक बार एक महात्मा ने उनको ज्योतिष्मती कल्प विधि की एक हस्त लिखित पुस्तक दिखाई और कहा कि उसको उक्त पुस्तक हिमालय के किसी महात्मा के द्वारा प्राप्त हुयी थी।

एक बार जब हम पूज्य स्वामी जी के जन्म दिवस पर उनके दर्शन करने गये तो स्वामी जी ने हमसे ज्योतिष्मती कल्प के सम्बन्ध में बतलाया और कहा कि तुम ज्योतिष्मती का पता लगाओ हम यह कल्प करना चाहते हैं। हमने ज्योतिष्मती के सम्बन्ध में दतिया के स्वामी जी से सुना था, वे नेत्र की ज्योति बढ़ाने और स्मरण शक्ति को सुरक्षित रखने के लिए इसे बांटते थे। प्रश्न करने पर उन्होंने बताया था कि यह कटनी के आस पास मिलती है और इसका नाम मालकांगनी है। हमने कटनी के आस-पास इसका पता लगाया परन्तु वहाँ नहीं मिली। तब हमारे एक डाक्टर भीमराव ताथोड़ को वारासिवनी पत्र लिखाया, उन्होंने उत्तर भेजा कि मध्य प्रदेश के बालाघाट जिले के पास बैहर के जङ्गलों में यह औषधि मिलती है।

हम बैहर के जङ्गलों में गये, सर्दी का समय था, औषधि को प्राप्त करने के लिये उसको पहले रक्ताक्षत एवं मौली से निमन्त्रित करना पड़ता था। फिर दूसरे दिन उसे तोड़ा जाता था। इसी प्रकार पन्द्रह दिन तक औषधि को निमन्त्रित कर तोड़ने का क्रम चला। पूज्य स्वामी करपात्री जी भी इसी बीच एक दिन के लिये उस स्थान पर पहुंचे। उन्होंने अपने हाथ से ज्योतिष्मती की लता का पूजन किया, फिर उसे दूसरे दिन तुड़वाया गया। उसका तेल निकलवाया। वाराणसी के नारद घाट में उक्त औषधि का विधिवत् पूजन श्री रामनाथ जी वैदिक द्वारा सम्पन्न हुआ। फिर उसमें गोघृत, गो-दुग्ध, शहद आदि डालकर पकाया गया फिर उसे धान्यराशि के अन्दर २१ दिन रखा गया। चीनी मिट्टी के बर्तन में मुख पर मिट्टी से बांधा गया था।

नारद घाट में औषधि के संस्कार हो रहे थे और नवीन विश्वनाथ मन्दिर के पास मीरघाट में कल्प विधान के अनुसार त्रिगर्भा कुटी का निर्माण हो रहा था। पूज्य स्वामी जी ने पंच कर्म किया

पंचकर्म जामनगर आयुर्वेद शोध संस्थान के भूतपूर्व निदेशक एवं वर्तमान में वाराणसेय संस्कृत विश्व विद्यालय में आयुर्वेद विभाग के अध्यक्ष आचार्य श्री विश्वनाथ द्विवेदी की देखरेख में सभी कार्य हो रहे थे। पंचकर्म बड़ी ही प्रसन्नतापूर्वक सम्पन्न हुआ।

पण्डितों से मुहूर्त पूछकर भगवान विश्वनाथ जी का दर्शन करके उत्तम मुहूर्त में स्वामी जी ने त्रिगर्भा कुटी में प्रवेश किया औषधि लेना प्रारम्भ किया। कुटी के अन्दर घृत का दीपक जलता रहता था। कुटी के अन्दर हम आचार्य विश्वनाथ जी एवं एक ब्रह्मचारी परिचर्या के लिये, केवल तीन ही व्यक्ति जा सकते थे। कुटी के अन्दर औषधि और दूध स्वामी जी ले रहे थे। औषधि के साथ भाजन में दूध साठी चावल एवं शहद का विधान था। उसी प्रकार क्रम चल रहा था। कल्प के समय स्वामी जी केवल संस्कृत में ही बोलते थे, इस बीच उन्होंने अनेकों आध्यात्मिक ग्रंथों का परिशीलन किया। हम प्रातः सायं दो-दो घन्टे बैठते थे, उस बीच उनसे आध्यात्मिक रहस्य पर चर्चा होती रहती थी। हम नवीन विश्वनाथ मन्दिर के कमरे में रहते थे जब कभी उन्हें आवश्यकता पड़ती थी, वे हमें रात को भी बुला लेते थे।

कल्प का उल्लेख आयुर्वेद के कई प्रामाणिक ग्रंथों में है चरक, औषधि कल्पलता एवं वाग्भट्ट द्वारा रचित रसरत्न समुच्चय आदि में इसका उल्लेख है। ज्योतिष्मती के सेवन से बड़ी विलक्षण बातें बतलाई हैं। रसरत्न समुच्चयकार ने लिखा है—

ज्योतिष्मती नाम लता पीता पीत फलोज्वला।
आषाढ़े पूर्व पक्षे स्याद् गृहीत्वा बीजमुत्तमम्॥
आहरेत्तिलवत्तैलं मुष्टिना वापि तत्पचेत्।
क्षीर तुल्यं चतुर्थांश माक्षिकं तैलशेषितम्॥
ततस्तत्कोल कर्पूरत्वग्जातीफल मिश्रितम्।
स्निग्धभाण्डगतं धान्येष्वनुगुप्तं निधापयेत्॥
पिवेत् सूर्योदये तैलात्पलं याति विसंज्ञनाम्।
ततः संज्ञां शनैर्लब्ध्वा ततः क्रन्दति रोदिति॥
एवं मासे श्रुतधरः परस्मिन्सूर्य सन्निभः।
तृतीये पूज्यते देवैश्चतुर्थे नैव दृश्यते।
खेचरः पञ्चमे षष्ठे सिद्धैर्मिलति सप्तमे।
विष्णोः सम दिनं जीवेज्जीवन्मुक्तोष्टमे भवेत्।

अर्थात् ज्योतिष्मती नाम की लता पीता और पीतफला होती है। आषाढ़ के पूर्व पक्ष में उसके उत्तम बीजों को ग्रहण कर उत्तम तेल निकालें और औषधि के समान भाग दूध मिला कर चतुर्थांश मधु डालें। उसे मिट्टी के बर्तन में मन्द आँच में पकाये जब तेल मात्र शेष रह जाये

तो उतार लें और ठण्डा करें, उसमें कंकोल, जायफल, कर्पूर, तज डाल कर बरनी में रखें और कपड़ मिट्टी करके उसे धान्यराशि में २६ दिन तक पकायें। फिर त्रिगर्भा कुटी में पंचकर्म करके बैठें। सूर्योदय के समय चार तोले औषधि का पान करें, औषधि पान करने से बेहोशी आ जाती है धीरे-धीरे जब होश आता है तो वह रोता चिल्लाता है। भूख लगने पर साठी चावल और दूध मधु के साथ देना चाहिये। इस प्रकार एक मास में औषध करने से श्रुतधर हो जाता है, दूसरे मास में सूर्य के समान तेजस्वी हो जाता है, तृतीय मास में देवता उसकी पूजा करने लगते हैं। चौथे मास में वह अदृश्य हो जाता है पाँचवे मास में आकाश में विचरण करता है। छठे मास में सिद्धों से भेंट होती है। सातवें मास में विष्णु के बराबर हो जाता है। आठवें मास में जीवन्मुक्त हो जाता है।

स्वामी जी ने जब इसका सेवन प्रारम्भ किया, किन्तु एक ही दिन एक तोला पी पाये, अधिक पीने से बेचैनी होती थी। क्रम केवल ४० दिन तक ही चल पाया। इतने में ही उनके शरीर में काफी परिवर्तन हो गया था। लोगों का कहना था कि उनकी आयु २५ वर्ष कम दिखाई पड़ने लगी थी। बीच में अनेकों विघ्न आये, बहुत से लोगों ने हमसे कहा यदि स्वामी जी को कुछ हो गया तो दोष तुम्हारे शिर पर आयेगा। हमने उनके आदेश को देखते हुए किसी भी बात की परवाह नहीं की। जब तक कल्प चला हम बराबर सब कार्यक्रम छोड़कर उनकी सेवा में रहे

आज त्रिगर्भा कुटी तो है परन्तु कल्प करने वाला नहीं। अपनी बीमारी के दिनों में असह्य कष्ट रहने पर भी पूज्य स्वामी जी ने आयुर्वेद औषधि छोड़कर दूसरी औषधि नहीं ली। भारतीय संस्कृति और सभ्यता का इतना कट्टर उपासक अब कहाँ मिलेगा। अन्त में उनसे जो बातें हुई और उनके द्वारा जो कार्य हुये वे हमें सदा स्मरण रहेंगे।
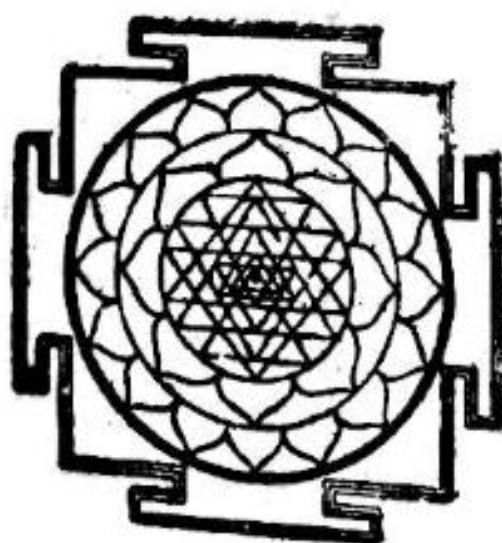
श्री करपात्री जी का नेतृत्व

—१००८ स्वामी श्री हरिबोधाश्रम: जी महाराज, पक्काघाट, बागपत।

प्रात: स्मरणीय ब्रह्मीभूत अनन्त श्री विभूषित श्री हरिहरानन्द जी सरस्वती (श्री करपात्री जी महाराज) एकमात्र भारत के नेता थे जिन्होंने भारत को भारत के रूप में देखना चाहा। आज एक लम्बे काल के विदेशी शासन के फलस्वरूप जो विकृति भारत में आ गयी है उसे दूर करने का यदि किसी ने प्रयत्न किया तो इन श्री महाराज ने। ऐसे महात्मा के महत्व का मूल्याङ्कन साधारण स्वकीय बुद्धि के अनुसार श्री महाराज के सान्निध्य में प्राप्त विचारों के आधार पर मैं इस लेख में करने का प्रयत्न करता हूँ।

भारत से अंग्रेज चले गए। भारतीय नागरिकों ने समझा कि हम स्वतन्त्र हो गए। परन्तु हृदय तथा मस्तिष्क अब भी अंग्रेजियत का दास है। इसे भारतवासियों ने भुला दिया। फलस्वरूप जो सांस्कृतिक ह्रास इस स्वतन्त्रता काल में हुआ वह उससे कई गुना है जो मुसलमान तथा अंग्रेजों के शासन में हुआ। स्वामी जी ने भारतीय जनता को यह समझाने का भरसक प्रयत्न किया शासक धार्मिक तथा अपनी संस्कृति को समझने वाला होना चाहिये।

भारत की अखण्डता का नारा लगाने वाले करपात्री जी एकमात्र नेता थे। उन्होंने घोषित किया कि विभाजन हमारे ही नेताओं की निर्बलता का परिणाम है। अपनी मातृभूमि के अङ्गों को कटवाकर उसके लुञ्ज पुञ्ज शरीर की असहाय स्थिति पर स्वतन्त्रता का उत्सव मनाना जघन्य पाप है इसका इन्होंने डिम-डिम घोष किया।

गोवध निषेध तथा सर्व प्रकार से गोवंश रक्षा का प्राविधान हमारे विधान में हो इसे लेकर १९४७ में आन्दोलन किया परन्तु भारतीय मर्यादाओं के साथ खिलवाड़ करने वाले नेताओं ने इसकी ओर ध्यान न दिया। जीवन भर इस महात्मा ने इस ओर राष्ट्र का ध्यान आकर्षित करणार्थ अनेक आन्दोलन किये। इसी समय वर्तमान विधान की निर्बलताओं की ओर दृष्टिपात करते हुये शासन विधान शास्त्रीय हो इस पर बल दिया।

दूसरी गोलमेज से लौटने के पश्चात् श्री गांधी जी ने जो सुधारवाद का बीड़ा उठाया उससे यह स्पष्ट हो गया कि ये नेता अपने को धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक सभी क्षेत्रों में मनमाने ढंग से पाश्चात्य देशों के आधार पर हमारे राष्ट्र का नवनिर्माण करना चाहते हैं इससे सतर्क होकर नेताओं द्वारा समर्थित हिन्दू कोडबिल, मन्दिर प्रवेश बिल आदि का श्री महाराज ने विरोध किया।

भारतीय शिक्षा की जो प्रतिदिन अधोगति हो रही है उसे सुधारने के लिए धर्मसंघ शिक्षा मण्डल की स्थापना की। नव शिक्षा से शिक्षित होकर किस प्रकार हमारी मातायें और बहिनें सीता, सावित्री के सतीत्व गौरव को भूलती जा रही हैं इसे दृष्टि में रखते हुये धर्मसंघ महिलामण्डल की स्थापना की। धर्मसंघ की स्थापना करके उसके तत्वावधान में अनेकों यज्ञों का आयोजन करके धार्मिक

भावनाओं को बढ़ावा दिया तथा प्राणियों में सद्‌भावना का सञ्चार करने का यथासम्भव प्रयत्न किया। 'वेदार्थ पारिजात' लिखकर भारतीय संस्कृति के मूल स्रोत वेद के वास्तविक स्वरूप को संसार के सामने रक्खा।

प्रजातन्त्र में नागरिकों को तीन भागों में बांटकर प्रजातन्त्र के साथ भारत में खिलवाड़ किया जा रहा है। हरिजन तथा मुसलमानों का प्रतिनिधित्व अलग-अलग है। अंग्रेजों के काल में भारतीय नेताओं ने इसका पर्याप्त विरोध किया था। परन्तु अब अपनी कुर्सी बचाये रखने हेतु इसे बढ़ावा दिया जा रहा है। श्री महाराज ने इसका विरोध किया तथा नागरिकों के साथ समान व्यवहार पर बल दिया।

आज धर्म पर कुठाराघात इस प्रकार बढ़ा है कि भ्रूण हत्या जैसे जघन्य पाप को भी वैध बना दिया गया है यद्यपि नपुंसक को श्राद्ध इत्यादि का कोई अधिकार नहीं परन्तु आज परिवार नियोजन का निर्लज्जतापूर्वक प्रचार प्रसार हो रहा है। नपुंसकता प्रत्येक घर में स्थान रखती है। श्री स्वामी जी ने इसका विरोध किया।

आज के राजनीतिक दलों के सामने राष्ट्रोत्थान का कोई कार्यक्रम न देखकर उन्होंने रामराज्य परिषद् की स्थापना की। इसके सदस्य सभी धर्मों तथा जातियों के सदस्य हो सकेंगे तथा किसी भी व्यक्ति को योग्यता के आधार पर राष्ट्र में ऊँचे से ऊँचे स्थान पर प्रतिष्ठित किया जा सकता है।

आज साम्यवादी संसार में वर्गहीन क्रान्ति लाना चाहते हैं। वर्ग का समर्थन करने वाले देश अभी बहुमत में हैं परन्तु उन्हें यह ज्ञान नहीं कि वर्गों की क्या स्थिति हो कि साम्यवाद के वर्गहीन समाज का प्रबल विरोध किया जा सके। श्री महाराज ने अपने नेताओं तथा नागरिकों को जाति व्यवस्था के रूप में स्थाई श्रमविभाजन को आदर्श समाज के लिए आवश्यक सिद्ध किया तथा जाति व्यवस्था का विरोध करने वाले नेताओं को चेतावनी दी कि वे भारतीय समाज के महत्व को नष्ट करने का व्यर्थ प्रयास न करें।

महाराज के शाश्वत शास्त्रीय सिद्धान्तों का परिचय उनके अनेकानेक ग्रंथों से मिलता है। आशा है भारतीय जनता उनको पढ़कर अपने वास्तविक स्वरूप का ज्ञान प्राप्त करेगी।

● ●

हमारे श्री गुरुदेव

—श्री लक्ष्मण चैतन्य ब्रह्मचारी जी महाराज, धर्मसंघ शिक्षामण्डल, दुर्गाकुण्ड, वाराणसी।

परब्रह्मस्वरूप वेदशास्त्र में परम निष्णात, त्याग, तपस्या, उदारता के महासमुद्र, अपने सिद्धान्त के प्रति तथा निर्विच्छन्न सनातन मर्यादा के प्रति हिमालय से भी कठोर, स्वजनोपर भक्तों पर विशेषकर अपने इस अकिंचनदास पर करुणा के साक्षात् प्रतिमूर्ति, स्पष्ट, कहने में किसी के किसी भी दुर्गुण को उसके समक्ष कहने की निर्भीकता में महासिंह के सदृश्य निर्भीक, शास्त्रीय गूढ़ तत्व के सम्पादन निष्पन्दन, व्याकरण, न्याय साहित्य मीमांसा वेदान्त पुराण के दुरुह गम्भीर पंक्ति-स्थलों में उन विषयों के प्रतिपादन सम्पादन करने में बृहस्पति के समान अद्भुत, वैदुष्य तथा विषय प्रतिपादन की कथन शैली एवं व्याख्यान देने में सरस्वती के समान अवाध निर्वाध गतिशील, वाणी दर्शन करने में सांगोपांग अनन्तकाम के समान सुन्दर, बल पराक्रम अद्भुत, विराट विक्रम तेज, गऊ, ब्राह्मण, शास्त्र, धर्म, मन्दिर, ईश्वरदीन दुखियों के लिए धरणी माता के समान सहनशील, ऐसे थे हमारे परम पूज्य प्रातः स्मरणीय प्रेरणा के स्रोत बुद्धि के चैतन्य परम श्री अनन्त श्री स्वामी करपात्री जी महाराज उनकी जय-जयकार हो।

हमारे ग्राम के सन्निकट के ही महाराज श्री की पुनीत जन्मभूमि होने के कारण ही मेरे पितामह फिर मेरे पिता श्री महाराज श्री के चरणों के अनन्य भक्त थे, इसीलिए महाराज श्री के चरणों में हमारी प्रीति पैतृक परम्परा से प्राप्त है। सन् १९५६ में कवर्धा राजमहल में मेरी शुभ दीक्षा सम्पन्न हुयी थी। हम सब सदा ही महाराज श्री के चरणों के प्रताप से यहाँ तक पहुँचे हैं और आगे भी महाराज श्री के चरणों की कृपा से गऊ, ब्राह्मण की रक्षा में बढेंगे। हमारे महाराज श्री पारसमणि के पहाड़ थे जो छू गया सब कंचन हो गया, वह पहले कैसा कहीं भी रहा हो।

एक लोहा पूजा घर राखत एक घर बधिक परो,
यह दुबिधा पारस नहीं देखत, कंचन करत खरो।

उनकी कृपा से अब हम जीवनमुक्त हैं, सन्तुष्ट हैं और निश्चिन्त हैं और समस्त भविष्य हस्तामलक की भाँति हमको प्रत्यक्ष है—

श्री गुरुपद नख मणिगण जोती सुमिरत दिव्य दृष्टि हिय होती।

हमारे पूज्य श्री गुरु महाराज कहीं गये नहीं हैं आज भी अहर्निश हमको अपने आगे पीछे दायें-बायें 'उठत-बैठत, चलत-सोवत-स्वप्न जागृत, रात, हृदय से वह मधुर मूरति क्षण न इति उत जात।' हे प्रभु श्री विश्वनाथ जी महाराज, श्री अन्नपूर्णा भगवती, हे ! गंगा माता, गऊमाता हमारे महाराज की कृपा हम पर सदा ही ऐसी ही बनी रहे। हर-हर महादेव।

□□

काशी के प्रकाश : ब्रह्मलीन स्वामी करपात्री जी महाराज

—डा० विद्यानिवास मिश्र कुलपति काशी विद्यापीठ-वाराणसी

काशी को यह गौरव प्राप्त है कि यह नगरी विद्या, साधना, कला तीनों का अधिष्ठान रही है और आध्यात्मिक वैभव, आधिदैविक वैभव और आधिभौतिक वैभव से सम्पन्न रही है। भगवती विशालाक्षी की विशाल दृष्टि ने इस नगरी को बहुत विशाल और उदार बनाया है, इतना कि त्रिलोक और काशी समतुलित हो गए हैं। काशी का एक-एक रज: कण सोने के बराबर माना जाता है, काशी से मिटटी कहीं प्रमाद से भी साथ बाहर कोई ले जाए तो उसे सोना चुराने जैसा पाप होता है, ऐसी लोक में मान्यता है, इसका अर्थ केवल यही है कि काशी में हेय या तुच्छ कुछ भी नहीं। हेय या तुच्छ समझने वाली दृष्टि ही नहीं पनपने पाती क्योंकि विद्या की साधना से जोड़ने वाले निरीह निरहंकार महापुरुषों की अवच्छिन्न परम्परा काशी को विभासित करती रही है। पूज्य ब्रह्मलीन स्वामी करपात्री जी इस परम्परा के एक दीप्तिमान शिखर थे। पूज्य भैया साहब, पं० श्री नारायण चतुर्वेदी कहते हैं कि वे इस शताब्दी के विद्या के सूर्य थे। वे काशी में जन्में तो नहीं, पर यही उन्होंने मंगनीराम ब्रह्मचारी की पाठशाला (अब लुप्त) में अध्ययन प्रारम्भ किया, यही उन्होंने उत्तरकाल में भी शास्त्रों का अनुशीलन किया, कृच्छ से कृच्छ साधनायें की, अनेक समारम्भ किये और यहीं वे गंगा के तट पर रहते हुये ब्रह्मलीन हुये, वे काशीमय हो गये। विद्या अर्जित करना काशी के लिये बहुत सहज अभ्यास है, पर विद्या के साथ-साथ तप अर्जित करना, तप के साथ निरीह भाव बनाये रखना, निरीहभाव को भी अभिलाषाओं की अभिलाषा, मन्मथ के मन्मथ की भक्ति में सराबोर कर देना और उस भक्ति का रासेश्वरी राधा के चरणों में निवेदित कर देना, यह किसी एक व्यक्ति से यदि इधर मुधुसूदन सरस्वती के बाद किसी से हुआ है तो वे ब्रह्मलीन स्वामी जी थे।

पूज्य स्वामी जी अयोध्या वृन्दावन जाते थे, प्रवचन देते थे, पर काशी से उन्हें एक ऐसा तादात्म्य था कि उन्होंने कभी शंकराचार्य पद का अभिषेक नहीं स्वीकार किया। उन्होंने कोई आश्रम या संस्थान नहीं बनाया, जो बनाया भी उसे ऐसा छोड़ा कि उधर झांकने भी नहीं गये। वे काशी-मात्र को सर्व विद्या का संस्थान समझते थे और उत्तरगामी गंगा प्रवाह को ही साधना की धारा समझते थे, काषाय मात्र को भागवत भाव का रंग मानते थे।

मुझे इस बात की कभी-कभी बड़ी कसक होती हैं कि उनके वैदुष्य को या उनके भागवत् भाव को या उनके तप का महत्व लोगों ने क्यों नहीं समझा, विशेष रूप से काशी के बाहर के लोगों ने। लोगों ने उन्हें राजनीतिक साधु माना, उन्हें विवादास्पद माना, क्योंकि वे सरकारी बाबा कभी नहीं रहे, मन्त्रियों, न्यायाधीशों, इंजीनियरों, डाक्टरों, सेठों और ऊँचे अधिकारियों के विदेशी भारतप्रेमियों के बाबा नहीं रहे। वे समूह संचार साधनों के बाबा भी नहीं रहे। उन्होंने सन्मार्ग निकाला, दूसरों को सौंप दिया, सिद्धान्त निकाला और सिद्धान्त जैसा भारतीय मनीषा का पत्र कोई और निकला नहीं,

'जैसे इक्षुरस (गन्ना) का ही परिणाम सिता, शर्करा, कन्द की मिठास इक्षुरस से विलक्षण होती है, वैसे शुद्ध सच्चिदानन्द से तत्त्वत: अपृथक होने पर भी भगवान का सगुण स्वरूप चमत्कार पूर्ण होता है। जैसे इक्षुदण्ड में दैवात् मीठा फल लग जाय या चन्दन वृक्ष में मनोहर पुष्प लग जांय, वैसे ही परमानन्दरस रूप निर्गुण ब्रह्म में सगुण, साकार ब्रह्म का होना है। तभी तो निर्गुण ब्रह्मानुभवी जनकादिकों का चित्त भी रामचन्द्र के सगुण-साकार स्वरूप पर मुग्ध हो गया था।

इनहि बिलोकत अति अनुरागा।
बरबस ब्रह्म सुखहि मन त्यागा।

सहज विराग रूप मन मोरा।
थकित होत जिमि चन्द चकोरा॥"
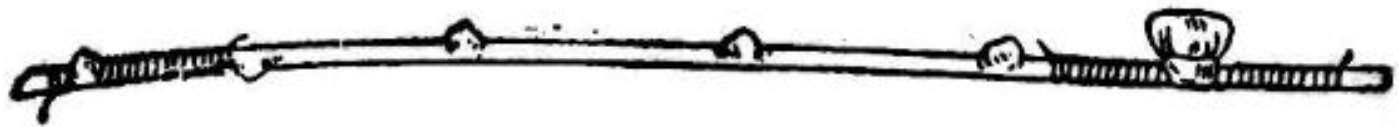
उसे भी उन्होंने बन्द कर दिया, क्योंकि वे किसी से भी परिचालित नहीं हो सकते थे। कई बार बड़े-बड़े धनपतियों की सेवा उन्होंने ठुकरा दी, एक के बाद एक ठिकाना बदलते रहे। उन्होंने कोई गद्दी नहीं चलायी, कोई अलग सम्प्रदाय नहीं स्थापित किया, अपने को विशाल परम्परा के केवल प्रकाश वाहक नहीं, प्रकाश-केन्द्र के रूप में जाग्रत रखना है, इस भाव से बिना किसी एषणा के एक एषणा साधनी थी कि प्रकाश मन्द न पड़ने पाये। मैंने एक बार उनसे पूछा—महाराज जी आपने रामराज्य परिषद् क्यों स्थापित की, आप देख रहे हैं कि इसके पीछे जनमत नहीं है और आप वीतराग संन्यासी हैं, आपको राजसत्ता से कोई प्रयोजन भी नहीं है? उन्होंने बहुत देर तक मौन रहकर जो उत्तर दिया था, वह इस प्रकार है—"मैंने यह कार्य जानते हुये किया कि इस काषाय वस्त्र का यह कार्य नहीं है, पर मैंने देखा राजनीति का एक स्वरूप है, जिसे किसी को सामने रखना है, वह आधार लोगों को ज्ञात होना चाहिये और कोई उस काम को अपने हाथ में नहीं ले रहा है तो मुझे इसलिए लेने के लिए बाध्य होना पड़ा कि संन्यासी का कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य कुछ न होते हुये भी जीवन यात्रा के अनिवार्य भोग के रूप में जीवन के आधार तत्वों के विषय में सजगता बनाये रखनी है। रामराज्य परिषद् मेरा लक्ष्य नहीं है, न इसके द्वारा सत्ता हथियाना लक्ष्य है, सत्ता को चुनौती देने वाली चेतना का स्फुरणमात्र लक्ष्य है। जो विदेशी विचारों से आक्रान्त व्यवस्था देश की प्रकृति की उपेक्षा करके चल रही है, उसका विकल्प देना एक काम है, जिसे करना गृहस्थ को चाहिये, पर वह नहीं करता तो संन्यासी तो सभी आश्रमों का विलयन है, उसे प्रत्येक आश्रम के दायित्व का स्मरण तो कराना ही होगा।"

पूज्य स्वामी जी ने यह भी कहा था बहुत सी मर्यादायें टूट रही हैं, बहुत सी व्यवस्थायें टूट रही हैं, पर इससे यह समझ लेना, कि कोई मर्यादा कोई व्यवस्था बनाये रखने की बात न सोची जाए, उचित नहीं है। वे प्राणिमात्र के कल्याण को सामने रखते हुये एक जीवन की मर्यादा की ओर अगर भूतमात्र की सेवा के लिये अर्पित संन्यासी ध्यान न दिलाये तो उसके हाथ में धारण किये हुये दण्ड की सार्थकता न रह जाए।

पूज्य स्वामी जी समय के प्रवाह की बात को कुछ महत्व नहीं देते थे, वे इसे गड्डलिका-प्रवाहमात्र मानते थे। इसका अर्थ यह नहीं कि वे ज्ञान-विज्ञान की नयी उपलब्धियों की उपेक्षा करते थे, नये-नये वादों, मतों के बारे में जानकारी प्राप्त करते थे, पढ़ते थे, तकनीकी के विकास के बारे में पूछते रहते थे। एक बार उन्होंने प्लास्टिक के रासायनिक उपादानों के बारे में यह अनुमान लगाते हुये पूछा कि इसमें कुछ जीवन-विरोधी तत्व अवश्य हैं, क्योंकि यह नष्ट होने पर पुनः जैव पदार्थ में रूपान्तरित नहीं होता। मैंने उनसे कहा था कि महाराज जी आपका अनुमान ठीक है। प्लास्टिक वह कचरा है जो कचरा ही बना रहेगा, इसे आग, जल, मिट्टी, हवा कुछ भी आत्मसात् नहीं कर सकेंगे। इसी से पश्चिम के चिकित्सक बच्चों द्वारा इसके उपयोग के खतरों की ओर संकेत कर रहे हैं। वे प्रगति के विरोधी नहीं थे पर प्रगति की रूढ़िवादिता के विरोधी थे। वे देश-काल व्यक्ति की दृष्टि से ही किसी वस्तु की ग्राह्यता-अग्राह्यता की बात करते थे। वे हिन्दू धर्म का झंडा भी नहीं फहराना

चाहते थे न किसी को प्रभावित करके हिन्दू बनाने के पक्षपाती। वे मुसलमान को अपने ईमान पर रहने का उपदेश देते थे, पर वे किसी संकोच या किसी मुरौवत में जो परीक्षित समाई नहीं है, उसे स्वीकार नहीं कर सकते थे। उन्हें इसका भी भय नहीं था कि लोग मुझे राजनीतिक व्यक्ति समझेंगे, प्रतिक्रियावादी समझेंगे, पुराणपंथी समझेंगे। वे हर प्रकार के भय से मुक्त थे क्योंकि वे हर प्रकार के लाभ से मुक्त थे, वहाँ तक कि प्रतिष्ठा के यश के और यश तो छोटी बात है, मोक्ष के लोभ से भी मुक्त थे। मुझे स्मरण है कि एक बार महाभारत के विषय में में बड़ी चर्चा हुयी, कुछ पुरातत्ववेत्ताओं ने बतलाया कि महाभारत एक सामान्य घटना थी, एक कबीलाई झगड़े को बहुत तूल दिया गया, उस काल के कोई विशेष महत्वपूर्ण भौतिक साक्ष्य नहीं हैं। लोगों ने महाराज जी से कहा एक बड़ा विद्वत् सम्मेलन बुलाइये, यह सिद्ध करने के लिये बुलाइए कि महाभारत की घटना लगभग ५००० वर्ष से और पहले हुयी और महाभारत में उस घटना का वास्तविक वर्णन है आदि आदि। महाराज जी ने कई विद्वानों को विचार-विमर्श के लिये बुलाया, मैं भी गया। महाराज जी बड़े मनोयोग से बातें सुनते रहे, बीच में किसी पुरातत्ववेत्ता के पक्ष की बात में कोई टोकता था तो डाट देते थे कि उन्हें पूरा पक्ष सामने रखने दो। मैंने निवेदन किया कि महाराज जी, महाभारत एक ऐसी सच्चाई भी तो है जो हमारे जीवन का अंग है, हमारे श्वास-प्रश्वास में है, उसकी वास्तविकता की क्या और जांच आवश्यक है। वह तो स्वतः जीवन की निष्ठा से प्रमाणित है, रही बात अतीत काल की एक घटना की जांच की, सो हमारे पास जितने साधन हैं भौतिक पदार्थों की जाँच के, उसकी सीमा है, जितना जाना गया है, उसकी सीमा है। इन सीमाओं के भीतर जो वास्तविकता उजागर होती है, उसको दूसरे साधनों से या दूसरे प्रमाणों से खण्डित करने की आवश्यकता नहीं है। महाभारत की ऐतिहासिकता की एक सीमित वैदुषिक उपयोगिता है, उस उपयोगिता को नकारने के बजाय इस दृष्टि को ऊपर लाना हमारा कर्त्तव्य हो कि महाभारत का एक इतिहास का अतिक्रमण करने वाला पक्ष है, वह हमारे जातीय विकास में ही नहीं मनुष्यमात्र के विकास में निरन्तर प्रेरक है, वह पक्ष इस ऐतिहासिक सीमा के ऊपर बल देने से कहीं ओझल न हो जाए। महाराज जी का चित्त इतना निर्मल इतना विशद था कि मेरे जैसे छोटे आदमी की बात उन्हें जंच गयी। उन्हें जो लोग संकीर्ण कहते हैं, उनमें से काश कोई एक व्यक्ति उनके संस्कृत विश्वविद्यालय के सर्वदर्शन व्याख्यानों में उपस्थित रहता। बौद्धदर्शन के विभिन्न सोपानों के तत्वचिन्तन की जो व्याख्या उन्होंने प्रस्तुत की और जिस निर्मलता से अद्वैतियों द्वारा अद्यतन उठायी गयी शंकाओं का खण्डन किया, उससे लगता था कि बौद्धदर्शन का इतना बड़ा समर्थन कोई बौद्ध भी दे नहीं सकता। कई बौद्धदर्शन के पण्डित और स्वयं बौद्ध चकित हो गये। इस प्रतिपादन में उन्हें तीन दिन लगे, चौथे दिन उन्होंने एक ही घण्टे में अपने द्वारा स्थापित पूर्व पक्ष ढाह कर रख दिया। बिल्कुल नये तर्क, नयी उपपत्तियां (परम्परा के अनुकूल पर परम्परा में शास्त्र में कहीं उसी प्रकार से विन्यस्त नहीं) रखते चले गये। और उनकी भाषा तो सचमुच गंगा का प्रवाह, कहीं उपराम न लेने वाली, पीने के लिए तीन-तीन चार-चार घण्टे तक कभी पानी की जरूरत नहीं पड़ी,

बस बीच-बीच में कुछ मुद्रायें बदलतो थीं और सरस्वती अविराम एक छन्दोबद्ध नृत्य करने लगती थी। शास्त्र की बात करते समय इतने कठोर इतने निर्मम और भगवद्भक्ति की बात करते समय इतने तरल, इतने रागाकुल कि समझ में नहीं आता था, यह एक व्यक्ति है। पर ऐसा अकेला व्यक्तित्व उनमें था, कौन-सी कृपा थी भगवती की कि ज्ञान और भाव का महायोग एक देह में, एक वाणी में, एक चित्त में सम्भव हो गया था।

भाव की बात क्या करें, स्मरण करते ही आँखों में आँसू आ जाते हैं। महाप्रयाण के दो एक महीने पहले की बात है, दर्शन करने गया, कई बार उन्होंने इसके पूर्व कहा था, तुम काशी नहीं आ जाते उस बार गया तो पूजा पर बैठे थे, इशारे से बैठने को कहा, बैठा रहा। फिर पूजा से उठ प्रसाद दिया। किसी पार्श्वचर ने कहा महाराज जी आजकल दो ही ग्रन्थ सुनना चाहते हैं, पढ़ने को चिकित्सकों ने मना कर दिया है, एक भागवत दूसरा रामचरितमानस। कुछ पहले तो अमुक-अमुक द्वारा रचित भक्तों की कहानियाँ भी सुनते थे, पर अब बस यही दो ग्रंथ सुनते हैं और अश्रुपात करते जाते हैं। मैंने पूछा महाराज जी ये ही दो ग्रंथ क्यों इतने प्रिय हैं, वेदार्थ-पारिजात आप लिख रहे हैं। महाराज जी बोले—वेद की बात और है, वह तो भगवत्स्वरूप है, वह कोई भाषा नहीं है पर मानुष शरीर को, मानुष चित्त को और मानुष कर्णेन्द्रिय को मनुष्य की वृत्ति से आत्मीयता होती है, और ये दो कृतियाँ इसलिए प्रिय हैं कि इनके लिखने वाले ने और किसी उद्देश्य से नहीं लिखा, अपने अन्तस्तम की शान्ति के लिये या अपनी अतृप्ति से प्रेरित होकर लिखा, उन्हें न यश चाहिए था, न भगवान् ही अभीष्ट थे, वे भगवत्कथा के रस से तृप्त नहीं हो पा रहे थे, वे इस अतृप्ति को बटोरना चाहते थे, उन्होंने लिखा और सब तृप्तियाँ इस अतृप्ति पर न्यौछावर हैं। फिर रामचरित मानस से सुमन्त्र के लौटने का प्रसंग सुनाने लगे, गला रुन्ध गया। आगे बात नहीं हुयी। एक काम पहले ही सौंप चुके थे। भागवत सुधा नामक प्रवचनों का टेप लिखा गया था, उसे देखकर प्रसंगादि का ठीक-ठीक शोधन करना था, भूमिका लिखनी थी। उन्होंने कहा तुम यह काम कर डालो। बाद में वह ग्रंथ छपा। मेरी भूमिका, छापने वाले संस्थान ने छोटी कर दी, उनकी कृपा, पर फिर महाराज जी को वह ग्रंथ दिखा न सका, न फिर उनके 'नयनं' गलदश्रुधारया वचनं गद्गद्या गिरा पुलकैर्निचितं वपुः कदा तव नाम ग्रहणे भविष्यति' वाली अभिद्रुत लाक्षा में एकीभूत श्यामछवि वाला रूप फिर देखने को मिला। लोग कहते हैं कि वे ब्रह्मलीन हुये, मुझे लगता है कि ब्रह्मपद से अभिधीयमान जीव का चैतन्य प्रकाश, वेदार्थ ज्योति, भास मात्र एक ऐसे भावयोग में समा गया है जिसे काशी कहें या गंगा कहें, वृन्दावन कहें या यमुना कहें, कैलास कहें या मानसरोवर कहें, समझ में नहीं आता। यही लगता है पूज्य स्वामी जी कहीं गये नहीं वे इस फक्कड़ नगरी में किसी आकाश के कोने में गूँज बनकर अवस्थित हैं। उनका कोई उत्तराधिकारी नहीं, उनका बस उत्तरदाय है कि कभी यदि करो तो भारतीय मनीषा और भारतीय साधना की बात इस-लिए न करो कि तुम भारत भूमि के हो, इसलिये करो कि इसमें जीव मात्र की प्यास और भूख को शमित करने वाली एक प्यास और भूख है। जहाँ वह बात इस भाव से होगी, वहाँ स्वामी जी होंगे,

उनका दीप्त प्रभामण्डल वाला चेहरा होगा, अटकते हुये आपसी बातचीत का लहजा होगा, स्निग्ध और तरल दृष्टि होगी और उनके हाथों से दिया जाता प्रसाद होगा। मैं उन्हें श्रद्धाञ्जलि क्या दूं। मेरा अभाग्य कि मैं उनकी सन्निधि का आमंत्रण पाकर भी उस सन्निधि से वंचित रहा। काशी में रहने का निश्चय हुआ, पर वह सान्निध्य एक तरस भर रह गया है। चाहता था उनकी स्मृति में भगवद्-भाव पर केन्द्रित ग्रंथ निकाला जाये, पर कोई उसके लिये आकुल नहीं दिखता। पूज्य स्वामी जी का भाव शरीर आज भक्तिसुधा, भागवत् सुधा, राधा सुधा और ज्ञान शरीर वेदार्थ पारिजात है, पर इनकी बातें कितनों तक पहुँचानी है, किस-किस तरह से पहुंचानी है, यह काशी के लोगों के सोचने की बात है। किमधिकं उनकी वाणी की गूंज से भरी यह काशी, संस्कृत विश्वविद्यालय, गंगा तट, यह सारा परिसर प्रकाशहीन हो गया है। उनकी भौतिक सन्निधि थी तो वाचालता थी, वाग्मिता थी, अब उसके अभाव में किससे पूछें, कहाँ जायें, मानवीय मूल्यों के सम्बन्ध में रास्ता न दिखे तो किससे पूछें, कुछ समझ में नहीं आता, वही अनुभव होता है जो भगवान् श्री कृष्ण के लीला संवरण करने पर अर्जुन को हुआ, वैसा ही सूनापन, वैसी निरुपायता, वैसा ही अपनी अशक्तता का आभास, वैसा ही वंचित होने का भाव, उनसे कुछ सीखने की उम्र आयी, पर वे नहीं रहे। सन्मार्ग वर्ष में एक बार उनकी स्मृति जगाता है, उसका ऋणी हूँ। पर यह जगाना केवल निष्प्राण कर्मकाण्ड बनकर न रह जाए, यह मन में सोचता हूँ और एक अकेलापन पाता हूँ और तब सबसे अकेले रहकर खट् खट् आगे चलने वाले उन चरणों में आँखें झुक जाती हैं, और मुँह से निकल पड़ता है ॐ नमो नारायणाय। कहाँ हो चित्काशी के सवितृमण्डल में मध्यवर्त्ती सरसिजासन पर सन्निविष्ट हरिहररूप नारायण !

●●

स्वामी श्री करपात्री जी महाराज

—प्रो० करुणापति त्रिपाठी, भू० पू० कुलपति, संस्कृत विश्वविद्यालय

अनन्त श्री विभूषित स्वामी करपात्री जी महाराज भारत की अप्रतिम विभूति थे। वे धर्म-सम्राट एवं धर्म की साक्षात मूर्ति थे। ऐसी विभूतियां धरती पर शताब्दियों में कभी-कभी अवतीर्ण होती हैं। उनके समग्र व्यक्तित्व का साक्षात्कार और वर्णन करना अत्यन्त दुष्कर है। उनकी महत्ता कितनी विशाल और उत्तुंग है इसका आकलन आज इसलिये सम्भव नहीं है कि हम लोग उनके अत्यन्त निकट के हैं। काशी में उनके सतत रूप से रहने के कारण काशी-वासियों के लिये उनका सान्निध्य कितना घनिष्ठ था उनकी इस महिमा का ठीक-ठीक मूल्यांकन नहीं हो सकता। भारतीय संस्कृति, संस्कृत वाङ्मय धर्म तथा काशी के मूर्धन्य पण्डितों का जब इतिहास लिखा जायेगा तब उनके महान विभूति सम्पन्न, विशाल व्यक्तित्व के स्वरूप का परिचय कुछ-कुछ मिल सकेगा।

वे एक जागरूक चिंतक थे। वर्तमान युग की समस्याओं को शास्त्रीय दृष्टि से जितनी गहराई और सूक्ष्मता के साथ समस्याओं का आकलन करते थे, उतनी ही गम्भीरता के साथ शास्त्रानुसारी समाधान भी वे ढूंढ़ने का प्रयास करते थे, आज के युग में विश्व के सभी विकसित देशों में पश्चिम के दार्शनिक 'मार्क्स और फ्रायड' के विचारों का जितना प्राबल्य और प्रभाव है, उतना और किसी दर्शन बोध का प्रसार नहीं है। स्वामी जी महाराज ने उनके भौतिकवादी कल्पित मान्यताओं का बड़ी गहराई से परीक्षण करते हुए उनका खोखलापन और उनकी निस्सारता प्रतिपादित की है इसके साथ ही उन्होंने भारतीय शास्त्रों की एवं आध्यात्मिक दृष्टि के गम्भीर परिचिंतन के साथ समाधान भी प्रस्तुत किया। मार्क्सवाद और रामराज्य, पूंजीवाद, समाजवाद आदि विषयक उनकी कृतियों में इनका अवलोकन किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त शास्त्रीय मान्यता में अडिग आस्था होने के साथ उस दृष्टि से तथा समय पर उत्पन्न वाले अनेक सामाजिक, धार्मिक प्रश्नों के समाधान में शास्त्र-पोषित पक्ष को वह उपस्थित करते रहे हैं।

वे सच्चे अर्थों में धर्मप्राण एवं धर्मसम्राट थे। भारतीय सनातन धर्म के पारम्परिक मान्यतानुसारी व्याख्याता थे। केवल वह इन विषयों में मौखिक प्रवचन ही नहीं करते थे, अपितु इसके लिये उन्होंने धर्म संघ नामक धार्मिक और सामाजिक संस्था की स्थापना की। अपने सिद्धांतों के प्रचारार्थ सन्मार्ग दैनिक पत्र (काशी और कलकत्ता) का ४५ वर्षों से प्रकाशन कराते रहे हैं। धर्म की गूढ़ गुत्थियों को सर्वबोध्य बनाने के लिये 'सिद्धांत' नामक मासिक पत्र का वर्षों तक उनकी संरक्षता में प्रकाशन हुआ। सामाजिक और राजनैतिक क्षेत्र में सनातन धर्मी भारतीय मान्यता को प्रतिष्ठित करने

के लिये उन्होंने अखिल भारतीय स्तर पर 'रामराज्य परिषद' नामक राजनीतिक संस्था की स्थापना की जो आज भी जीवित है। इसके अतिरिक्त भारत के एक छोर से लेकर दूसरे छोर तक लगभग ४०-४२ वर्षों तक धर्म, आध्यात्मिक भावना, सच्चारित्व, धर्म में दृढ़ आस्था एवं सनातन धर्मों आचार-प्रतिष्ठा के लिये वे निरन्तर प्रयास करते रहे।

वे तपस्वी, धर्मनिष्ठ, त्यागी और सरल प्रकृति के व्यक्ति थे सच्चे अर्थ में महात्मा थे जिसका लक्षण शास्त्रों में बताया गया है—मन,वचन और कर्म में जो एक सा होता है वह महात्मा माना जाता है और जिसके मन में कुछ दूसरा वचन में कुछ दूसरा और कर्म में कुछ दूसरा जिसका जीवन होता है वह दुरात्मा होता है :—

मनस्येकं वचस्यैकं कर्मण्येकं महात्मानाम्।
मनस्यन्यद् वचनस्यन्यद् कर्मण्यन्यद् दुरात्मानाम् ॥

उनकी मेधा और संस्कृत वाङ्मय का अगाध जीवन्तज्ञान ऐसा था जिसका दूसरा उदाहरण मुझे नहीं दिखाई पड़ा। आज से ४०-४२ वर्ष पूर्व जब नगवा में गंगा-तरंग नामक भवन में रहते थे, तब मैं प्रधान नगवा पाठशाला (श्री शिवकुमार गोविन्द सांगवेद विद्यालय, प्रधान नगवा, वाराणसी) से व्याकरण शास्त्र का अंशकालिक अध्ययन करता था। उन्हीं दिनों सायंकाल अपने ममेरे भाई श्री श्रीनाथ प्रसाद मिश्र द्वारा स्वामी जी की प्रशंसा सुनकर, स्वामी जी के दर्शनार्थ कभी-कभी जाता था उस समय मैं व्याकरणाचार्य हो चुका था। स्वामी जी के यहाँ जब भी पहुँचता तब देखता था कि वे सायंकाल मीमांसा शास्त्र का अध्यापन करते रहते थे। वहीं उनका दर्शन हुआ। उस समय उनके समीप कभी-कभी थोड़ी देर मैं बैठ भी जाता था और देखता था कि पूर्वाधीत मीमांसा शास्त्र के रहस्य एकाएक उनकी मेधा में प्रतिभा के प्रकाश से उद्भासित हो जाते थे और वे अप्रतिहत गति से पढ़ाने लगते थे। तभी से मैं उनका भक्त बन गया था।

संस्कृत विश्वविद्यालय में जब मैं शिक्षा शास्त्र विभागाध्यक्ष था, उन दिनों तत्कालीन कुलपति ने मेरे और डाक्टर विद्या निवास मिश्र के आग्रह से भारतीय दर्शनों पर आठ दिनों का सायंकालोत्तर समय में एक व्याख्यान माला का आयोजन कराया था। जिसमें सभी आस्तिक-नास्तिक, आगमिक-नैगमिक, बौद्ध, जैन दर्शनों के साथ-साथ मीमांसा आदि षड्दर्शनों पर स्वामी जी का व्याख्यान प्रतिदिन लगभग २॥ से ३ घंटे तक होता था। उन्होंने मीमांसा वेदांत आदि षड्-दर्शनों के अतिरिक्त जैन और बौद्ध आदि दर्शनों की समस्त शाखाओं पर जितनी पूणंता, गहराई और सरल शब्दों में बोधगम्य भाषण दिया था, वैसी भाषण माला भारतीय दर्शनों पर आज तक सुनने को नहीं मिली। प्रति वर्ष जन्माष्टमी के अवसर पर वैष्णव दर्शन की विभिन्न शाखाओं, कृष्ण भक्ति तथा अन्य वैष्णव भक्ति मार्गों पर अत्यन्त गम्भीर पर साथ ही साथ जनता के लिये सुबोध्य उनका भाषण भी संस्कृत विश्व-

विद्यालय में होता था। जिसे सुनने पर ऐसा लगता अमृत की मानो वर्षा हो रही हो।

इसी प्रकार के व्याख्यान वृन्दावन भवन और एक बार सनातन धर्म इण्टर कालेज में चातुर्मास्य काल में प्रायः होता था, और मुझे जब भी सौभाग्य मिलता, मैं उस व्याख्यान के पीयूष वर्षण में सम्मिलित हो जाता। कहने का तात्पर्य केवल इतना ही है कि वे कई घण्टे तक व्याख्यान देने में थकते नहीं थे और गम्भीर से गम्भीर शास्त्रीय एवं दार्शनिक विषयों को सरल से सरल जनता बोध्य भाषा में उपस्थित करते थे। श्रीमद्भागवत, राधा सुधानिधि, षटसन्दर्भ आदि पर भाषण करते हुये वे स्वयं रसमय एवं रसतरल हो उठते थे। इसी प्रकार रामचरित मानस पर उनके व्याख्यान जितने पांडित्यपूर्ण, सरस और भक्तिपूर्ण होते थे उसकी तुलना भी नहीं हो सकती।

भक्तिशास्त्र पर उनकी अनेक रचनायें हैं। उनकी रचनाओं का आकलन मैं अल्पबुद्धि यहाँ नहीं कर सकता। पर भक्तिशास्त्र का एक तुच्छ अध्येता होने के कारण मैं उनके एतद् विषयक, ग्रंथों लेखों और भाषणों को अत्यन्त औत्सुक्य के साथ समझने का प्रयास करता था। भक्ति विषयक उनका नवीनतम ग्रंथ भी पढ़ रहा हूँ जो परम भक्तिमय एवं पांडित्यपूर्ण है।

उनकी अन्तिम योजना और 'वेदशास्त्रानुसंधान संस्थान' की स्थापना बहुत ही वृहद रही। 'वेदार्थ पारिजात' के दोनों खण्ड उनकी अमर कृतियाँ हैं जो युग-युग तक सनातनधर्म प्रेमी जनता को प्रेरणा देती रहेंगी।

वे तपस्वी, योगाभ्यासी, नित्य नैमित्तिक धर्मानुष्ठान - पारायण प्रखर और अप्रतिम एवं उद्भट विद्वान एवं परम पूज्य महात्मा थे। उनके विषय में इन कतिपय शब्दों के साथ अपनी भक्ति-भावपूर्ण भावनाभरित, दुखाश्रुपूरित श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ और सोचता हूँ कि शिवसायुज्य प्राप्त ब्रह्मलीन स्वामी जी के आशीर्वाद से उनके अपूरणीय कार्यों को पूरा करने का प्रयास कैसे होता है। ◘◘

पूज्य स्वामी करपात्री जी का लीला संवरण

—पण्डितराज बदरीनाथ शुक्ल, भूतपूर्व कुलपति संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी

पूज्य स्वामी करपात्री जी का पार्थिव शरीर जिसे भगवती भागीरथी गंगा ने केदारघाट वाराणसी मे प्रवहमान अपनी पावन धारा में अमूल्य रत्न के समान आत्मसात् किया, सच्चिदानन्द शिव का महनीय मन्दिर था उसमें प्रतिष्ठित शिव, करपात्री के नाम से अभिहित किये जाते थे। इस शरीर के माध्यम से जिस विद्या, धर्म, तप और त्याग का आदर्श प्रस्तुत हुआ था वह मानव जाति के मार्ग दर्शन के लिये प्रभाकर का नितांत निर्मल प्रकाश था, कदाचित ही ऐसा कोई मनुष्य हो, जिसे पूज्य स्वामी जी का दर्शन होने पर भी अपने जीवन को विद्या-धर्म आदि के अर्जन में अर्जित करने की भावना न होती रही हो। पूज्य स्वामी जी ने जिस समय प्रथम बार वाराणसी में पदार्पण किया और अपने उपदेशामृत की वर्षा आरम्भ की, उसी समय से पूज्य स्वामी जी के चरणों से मेरा सम्पर्क हुआ और मुझे अपने मानस का परिष्कार करने और अपनी ग्रहण शक्ति को सम्वर्धित करने की प्रेरणा मिली और उससे जो मुझे बौद्धिक और चारित्रिक उपलब्धि हुई उससे निश्चय ही मेरा जीवन कृतार्थ हुआ।

विराट व्यक्तित्व

पूज्य स्वामी करपात्री जी व्यक्तित्व विराट था, उनका मानव प्रेम और मानव जाति के उत्थान का संकल्प महान था, वे केवल वैदिक सनातन धर्म के अग्रदूत मात्र न थे, अपितु विश्व के अन्य राष्ट्रों में प्रचलित धार्मिक धारणाओं के भी उद्वेलक थे। उनकी यह मान्यता थी कि संसार में जहां कहीं भी धर्म के नाम से जो प्रचलित है वह सब उस सच्चे धर्म का जिसका वर्णन वेदशास्त्रों में उपलब्ध होता है, अंश है। अवश्य ही विभिन्न जातियों में अपनी सीमित रूढ़ियों अपने भाषागत विशेषताओं और अपनी भौगोलिक परिस्थितियों के अनुसार उसे रूपांतरित कर दिया। अतः पूज्य स्वामी जी का विचार था कि वेद शास्त्रों में वर्णित धार्मिक और आध्यात्मिक मान्यताओं की शास्त्र निर्दिष्ट अधिकारों के अनुरूप व्यापक शिक्षा की व्यवस्था की जानी चाहिये। जिससे विश्व के सम्पूर्ण मानव अपनी धार्मिक मान्यताओं में इस प्रकार का संशोधन कर सकें, जिससे उन्हें धर्म का अविकल रूप हृदयंगम हो सके और सभी लोग 'स्वधर्मे निधनं श्रेयः', भगवद्गीता के इस शाश्वत निर्देश के अनुसार अपने धर्म का पालन करने में अपने को समर्पित कर सकें।

उनके व्यक्तित्व का विराट रूप उनके उन नारों से जिन्हें उन्होंने मानवमात्र को अर्पित किया, निर्विवाद रूप में प्रकट होता है, ये नारे—'धर्म की जय हो, अधर्म का नाश हो, प्राणियों में सद्भावना हो, विश्व का कल्याण हो' इस रूप में प्रसिद्ध हैं। जनता इन्हीं नारों से श्री स्वामी जी का अभिवादन करती थी। जहां कोई सभा या समिति स्वामी जी के अनुयायियों द्वारा आयोजित होती थी, वहां सर्वत्र इन नारों

मे ही कार्यक्रम का आरम्भ और अवसान होता था। इन नारों से पूज्य स्वामी जी के कार्यकारक भाव विषयक चिंतन की गम्भीरता प्रकट होती है और साथ ही यह भी प्रकट होता है कि वे केवल हिन्दू जाति किंवा सनातन धर्मी जनता के ही हित चिंतक न थे अपितु सारे विश्व के हित चिंतक थे। स्पष्ट है कि विश्व का कल्याण तब तक नहीं हो सकता जब तक प्राणियों में सद्भावना न हो। प्राणियों की सद्भावना का अर्थ है–सम्पूर्ण प्राणियों में एक ही सत् तत्व की अनुभूति देखना। जिसे भगवद्गीता में—

विद्या विनय सम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि ।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः ॥

इस शब्द से कहा गया है। सद्भावना का दूसरा अर्थ है—जो बात अपने को प्रतिकूल मालूम हो उसे दूसरों के प्रति न करना, और जो वस्तु अपने अनुकूल हो, उसे दूसरों को भी सुलभ कराने का प्रयत्न करना—'आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत, यद्यदात्मन् इष्येत तत् परेभ्योऽपि चिन्तयेत्।' प्राणियों में ये सद्भावना तब तक नहीं पनप सकती जब तक उनके अधर्म का उनकी मानसिक मलिनता और संकीर्णता का निराकरण न हो। अतः 'प्राणियों में सद्भावना हो' इस नारे के पूर्व अधर्म का नाश हो इस नारे को स्थान दिया गया। इस नारे की भी सार्थकता तब तक नहीं हो सकती जब तक धर्म का उत्कर्ष न हो। प्राणी की जब तक धार्मिक प्रवृत्ति न हो। अतः 'धर्म की जय हो' इस नारे को प्रथम स्थान दिया गया।

स्वामी जी की राजनीतिक दृष्टि

पूज्य स्वामी जी भारत के केवल धार्मिक एवं आध्यात्मिक नेता मात्र न थे अपितु वे राजनीतिक नेता भी थे। जिस राजनीति को वे भारत के हित में समझते थे और जिसके द्वारा देश में वेदों के ईश्वर राज्य, रामायण के रामराज्य और महाभारत के धर्मराज्य की स्थापना हो सकती थी उसे प्रतिष्ठित करने के उद्देश्य से पूज्य स्वामी जी ने धर्म-संघ और राम-राज्य-परिषद की स्थापना की थी। धर्म-संघ के माध्यम से भारतीय राजनीति का विवेचन विश्लेषण निरूपण और निर्धारण होता था और राम-राज्य-परिषद के माध्यम से उसके कार्यान्वयन का प्रयत्न किया जाता था। निश्चय ही भारत का भाग्य सूर्य अभी अपने वास्तविक रूप में उदित नहीं हुआ है जिसके कारण इन दोनों संगठनों का देशव्यापी प्रभाव अभी तक नहीं पड़ सका है। किंतु स्वामी जी इनसे किंचित भी विचलित नहीं होते थे उनका कहना था यदि भारत को अपने वास्तवरूप में जीवित रहना और विकसित होना है और उसकी स्वतन्त्रता को यदि सच्चे रूप में सार्थक होना है तो पूरे देश को इन संगठनों के आश्रय में आना ही होगा।

अपनी राजनीतिक मान्यता को बुद्धिगम्य बनाने और उसकी ओर देश को आकर्षित करने के विचार से पूज्य स्वामी जी ने मार्क्सवाद और रामराज्य नामक महान राजनीतिक ग्रंथ की रचना

की है । इस ग्रंथ में विश्व के विभिन्न राष्ट्रों में प्रचलित सभी राजनीतिक विचारों की समीक्षा की गयी है और अकाट्य तर्कों और दूरदर्शिता पूर्ण विचारों से उनको अग्राह्यता बताते हुए भारतीय राजनीति का प्रतिपादन किया गया है । और धर्म नियन्त्रित राज्य की स्थापना को ही विश्व कल्याण का आधार बतलाया गया है ।

वेदशास्त्रों के यथार्थ व्याख्याता

वेद और शास्त्र स्वामी जी के विचारानुसार पूरे विश्व के लिये शाश्वत संविधान है । उनमें जिन नियमों और आचारों का वर्णन किया गया है उनका पालन संसार के सुख और शांति का स्रोत है । इसमें आधुनिक विद्वानों द्वारा किसी प्रकार का संशोधन या परिवर्तन नहीं हो सकता आवश्यकता केवल उसे ठीक ढंग से समझने और जीवन में उतारने की है । पूज्य स्वामी जी ने वेदों की अपौरुषेयता का अत्यन्त प्रभावशाली ढंग से समर्थन किया है, और उसके सर्वोच्च प्रामाण्य की प्रतिष्ठा की है उनका कहना था कि वेद अन्तिम प्रमाण है उसके अनुरूप किसी भी भाषा में जो छोटे मोटे ग्रंथ लिखे गये हैं वे सब प्रमाण हैं ।

कोई भी ग्रंथ चाहे कितने भी बड़े विद्वान का लिखा क्यों न हो यदि वह वेदशास्त्रानुरूप नहीं है तो उसे मान्यता नहीं मिलनी चाहिये क्योंकि उनसे मनुष्य का सार्वकालिक एवं वास्तविक हित साधन नहीं हो सकता । स्वामी जी को व्याकरण न्याय मीमांसा का अनुपम एवं सहज पांडित्य प्राप्त था अतएव वे वेद और शास्त्रों के यथार्थ व्याख्याता थे । वेद शास्त्रों के अभिमत बताने में उन्हें कभी कोई भ्रम नहीं होता था । वाराणसी की विप्रमण्डली उनके वैदुष्य और शास्त्रीय प्रतिपादन के समक्ष नत मस्तक थी । जो विद्वान जिन शास्त्रों का निरन्तर अध्यापन करते हैं उन्हें भी आश्चर्यचकित होना पड़ता था जब उन्हीं शास्त्रों की व्याख्या स्वामी जी के श्री मुख से सुनने को प्राप्त होती थी । शास्त्रीय प्रेमियों के विषय में विद्वानों को स्वामी जी से सदैव नया प्रकाश प्राप्त होता था ।

महान गो रक्षक

पूज्य स्वामी जी इस तथ्य को सदैव सामने रखते थे कि वेद ब्राह्मण और गौ धर्म के मूल हैं । वेदों का यथार्थ बोध ब्राह्मणों की आचार निष्ठा एवं गो जाति की सुरक्षा के बिना न तो धर्म की प्रतिष्ठा हो सकती है और न देश का लौकिक अभ्युदय हो सकता है । अत: इन तीनों के संरक्षण और संवर्धन के विषय में स्वामी जी सदैव प्रेरणा दिया करते थे । जीवन के उत्तरार्ध में वेद विद्या और गो रक्षा की ओर स्वामी जी अधिक सचेष्ट थे । पाश्चात्य विद्वानों और उनके अनुयायी भारतीय विद्वानों ने वेदों के सम्बन्ध में जो अनेक अप्रमाणिक विचार प्रस्तुत किये हैं, उनकी आलोचना करते हुए वेद के प्रामाणिक अर्थ को प्रकाश में लाने के उद्देश्य से स्वामी जी ने 'वेदार्थ पारिजात' नाम से वेद

के नये भाष्य की रचना प्रारम्भ की थी जिसके दो खण्ड प्रकाशित हो चुके हैं। गो रक्षा के लिये तो उन्होंने आत्म बलिदान तक का संकल्प ले रखा था और गो माता की रक्षा हो, गोहत्या बन्द हो, यह ध्वनि उनके प्रत्येक सांस की सहचर हो गयी थी।

देश का दुर्दैव

७ फरवरी १६८२ का दिन देश के दुर्दैव का दिन सामने होकर सामने आया। भारतीय सभ्यता और संस्कृति का पोषक उस अभागे दिन हमारे बीच से उठ गया। धार्मिकता आध्यात्मिकता एवं मनस्विता असहाय हो गयी। शिव ने अपने मन्दिर से सम्बन्ध विच्छेद कर लिया और समस्त उपाधियों को ध्वस्त कर अपने वास्तव स्वरूप में समाहित हो गया। अब उस शिव हीन मन्दिर को जगन्माता गंगा की गोद में समर्पित होना है। यह समाचार विद्युत के समान सारे देश में फैल गया, जो जहाँ रहा वहीं अवाक् हो गया। इस प्रकार पूज्य स्वामी करपात्री जी का लीला संवरण हुआ जो अन्त काल तक मानव की स्मृति में ताजा बना रहेगा और मानवता के उत्थान की प्रेरणा देता रहेगा।

●●

भगवान अपने संकल्प से ही समस्त संसार को बनाते हैं। भगवान का ही अंश जीवात्मा है और भगवान की 'माया' का ही अंश जीव का 'मन' है। अतः भगवान और माया की शक्ति उसी तरह जीवात्मा और मन में रहती है, जैसे महाकाश की अवकाश प्रदत्त शक्ति घटाकाश में रहती है, जल की शीतलता, मधुरता उसके अंश तरंग में हुआ करती है, अग्नि का दहन प्रकाशन सामर्थ्य उसके अंश विस्फुल्लिंग (चिनगारी) में रहा करता है। इस दृष्टि से भगवान की सभी शक्तियां जीवात्मा में होती हैं। माया की शक्तियां मन में रहती हैं। इसीलिये शास्त्रों ने कहा है कि जीवात्मा अपने संकल्पों, विचारों से बहुत कुछ कार्य कर सकता है। अत्याचार, अनाचार, पापाचार, व्यभिचार, दुराचार आदिकों से 'संकल्प' की शक्ति कमजोर हो जाती है। सदाचार, सद्विचार, सद्धर्म, तपस्या आदि से संकल्प की शक्तियां दृढ़ हो जाती हैं।"

—करपात्र स्वामी

अन्तर्मुखता एवं बहिर्मुखता के संतुलन का अपूर्व आदर्श :

स्वामी करपात्रीजी महाराज

प्रो० वि० वेङ्कटाचलम, कुलपति, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी

कठोपनिषद् के एक प्रसिद्ध मन्त्र में सामान्य मानवों की सहज बहिर्मुखी प्रवृत्ति के उल्लेख के साथ यह कहा गया है कि लाखों-करोड़ों में एक महापुरुष जन्म लेता है, जो प्राणिमात्र की इस जन्म-जात बहिर्मुखी वासना से हटकर, अपनी समस्त इन्द्रिय-चेतनाओं को अन्तर्मुख और आत्म-केन्द्रित बना कर, आत्मज्ञान को साधना से अमृतत्व की ओर अग्रसर होता है। मन्त्र इस प्रकार है : –

> **पराञ्चि खानि व्यतृणत् स्वयम्भूस्तस्मात् पराङ् पश्यति नान्तरात्मन् ।**
> **कश्चिद् धीरः प्रत्यगात्मानमैक्षद् आवृत्तचक्षुरमृत्वमिच्छन् ॥१**

मन्त्र का शाब्दिक अर्थ इस प्रकार है —विधाता ने मनुष्य के इन्द्रियों को बहिर्मुख ही बनाया है। फलस्वरूप मनुष्य सहज रूप में बाहरी वस्तुओं को ही देखता रहता है और उन्हीं में रमता रहता है। अपने ही अन्दर प्रतिष्ठित अपने ही आत्म स्वरूप को कभी देखने की चेष्टा तक नहीं कर पाता है। कभी-कभी कोई धीर-पुरुष अमृतत्व को (अर्थात जन्म-मरण के चक्र से मुक्ति की अवस्था) प्राप्त करने की लालसा से अपनी इस बहिर्मुख दृष्टि को प्रत्यावर्तित कर उसे अपने ही भीतर प्रेरित कर इस अन्तर्दृष्टि से परिपाक से आत्मस्वरूप का साक्षात्कार करता है।

भारतवर्ष सदैव ऐसे साधकों एवं सिद्धों की साधना-स्थली एवं क्रीड़ास्थली रही है। मुमुक्षुओं और जीवन्मुक्त ज्ञानियों की इस अविछिन्न 'प्रवाह-नित्य' परम्परा में स्वामी करपात्री जी महाराज एक नये संतुलन एवं समन्वय के संस्थापक हैं। हम कह सकते हैं कि बहिर्मुखता एवं अन्तर्मुखता के इस शाश्वत द्वन्द्व-संघर्ष में स्वामी जी ने युगीन आकांक्षाओं और अपेक्षाओं को दृष्टिगत कर नये-नये प्रयोग किये और भावी पीढ़ियों के लिये एक नया आदर्श भी उपस्थापित किया है। इस दृष्टि में उनकी जीवन-लीला को एक नया आविष्कार कहना असंगत नहीं होगा।

स्वामी जी की बहुमुखी प्रतिभा एवं उनका बहु-आयामी जीवन इस बात का प्रमाण है कि वे तो लोक-जीवन से नितांत विरक्त उन संन्यासियों में सर्वथा नहीं थे जो स्वयं को प्राकृत जन-समुदाय से काटकर एकांत-साधना में तल्लीन रहते हैं, जिनके सम्बन्ध में आधुनिक युग के मूर्धन्य महाकवि नीलकण्ठ दीक्षित ने लिखा है :—

> **पततु नभः स्फुटतु मही चलन्तु गिरियो मिलन्तु वारिधयो ।**
> **अधरोत्तरमस्तु जगत का हानिर्वीतरागस्य ॥२**

---

१. कठोपनिषद् २-१-१

२. नीलकण्ठ दीक्षित-विरचित— वैराग्यशतक : ६

अर्थात, आकाश गिर पड़े, पृथ्वी फटकर टुकड़े हो जाय, पहाड़ चलने लग जाय, समुद्र मिल कर जल-प्रलय ही उपस्थित करें, अथवा सारे संसार का जीवन ही अधरोत्तर एवं अस्त-व्यस्त हो जाय– ऐसी भयानक विकट विषमता की स्थिति में भी एक वीतराग आत्माराम मुनि के लिये क्या फर्क पड़ता है? वह किसी भी स्थिति से क्या खोता है अथवा क्या पाता है? प्रातः स्मरणीय स्वामी करपात्री जी के जीवन दर्शन में लोक जीवन के प्रति उद्वेग पर आधृत वैराग्य का कोई स्थान नहीं था। वे तो भगवद्गीता के 'यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः' के प्रबल पक्षधर थे। स्वामी जी तो अपने देशवासियों के आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक जीवन से पूर्णरूप से लिप्त थे। धार्मिक उत्थान के माध्यम से देश के सर्वांगीण विकास के वे महान स्वप्नदृष्टा थे। इस महती भूमिका के निर्वाह के लिये अपेक्षित बहिर्मुखता का उन्होंने हृदय से स्वागत किया और राष्ट्रोद्धार के लिये पूर्णतया समर्पित अपने जीवन के किसी भी क्षण में सोचा नहीं होगा कि यह बहिर्मुखता उनकी अपनी आत्मिक अन्तर्मुखता में बाधक है। संसार के कल्याण के लिये अनवरत सक्रिय यह बहिर्मुखता और अन्तर्मुखता का ही देहली- द्वार था। ममकार के परित्याग के स्थान पर उसके उदात्तीकरण के वे पक्षधर थे। इस सम्बन्ध में भी नीलकण्ठ दीक्षित की मार्मिक उक्ति उनकी जीवन-नीति के इस पक्ष को भली-भाँति आलोकित करती हैं। दीक्षित जी ने लिखा है :—

त्यक्तव्यो ममकारस्त्यक्तुं यदि शक्यते नासौ।
कर्तव्यो ममकारः किन्त स सर्वत्र कर्तव्यः ॥३

शिव एवं शक्ति के परम आराधक इस महाकवि के अनुसार ममकार में निहित बुराई का संस्कार करने का एकमात्र उपाय यह है कि वह ममता क्षुद्र पारिवारिक या क्षेत्रीय सीमाओं के अन्दर आबद्ध न रहकर अपने भुजा-वलय में समस्त मानवता का आलिंगन करे। अपने प्रदेश, राष्ट्र या समग्र वसुधा-कुटुम्ब के उद्धार के लिये समर्पित लोककल्याणकारी किसी भी महान विभूति के जीवन की आधार-भित्ति भी यही है। आचार्य चूड़ामणि श्री शंकर-भगवत्पाद ने जिस प्रकार समग्र भारतवर्ष में अपने अद्वैत सिद्धांत की प्रतिष्ठापना के लिये प्रतिबद्ध होकर 'अहमिदं ममेदम्' के नैसर्गिक लोक-व्यवहार[४] को अपने जीवन में स्वीकारा, उसी प्रकार स्वामी करपात्री जी ने भी 'विश्व का कल्याण हो' के प्रति अपने वसुधाव्यापी ममकार को अन्तिम क्षण तक जीवित रखकर कल्याणमयी बहिर्मुखता का एक प्रशस्त उदाहरण रखा। धार्मिक क्रांति के अग्रदूत के रूप में यदि स्वामी जी 'युद्धाय कृतनिश्चय'[५] थे, तो उनको इस धर्मयुद्ध के लिए प्रेरणा सूत्र मिला, गीता के उसी श्लोक के प्रारम्भिक पाद से—हतो

३. **नीलकण्ठ दीक्षित—विरचित : वैराग्यशतक : ७७**
४. **ब्रह्मसूत्र-शांकरभाष्य, अध्यास-भाष्य का प्रारम्भिक वाक्य।**
५. **भगवद्गीता : २.३७।**

वा प्राप्स्यसि स्वर्गम्' । अतएव उनकी यह राजनीतिक संघर्षात्मक धर्मनिष्ठामयी बहिर्मुखता सामान्य मनुष्यों की वासनामयी बहिर्मुखता से कोसों दूर थी वह तो 'हत्वापि स इमान् लोकान् न हन्ति न निबध्यते' की श्रेणी में आती थी । बहिर्मुखी व्यापारों में सतत लगे रहने पर भी, सांसारिक राजनीतिक प्रपञ्चों में नितांत संपृक्त रहने पर भी अपनी मौलिक अन्तर्मुखता में प्रतिष्ठित रहना योग-साधना की चरम सीमा है । इसका एक बड़ा रोचक काव्यात्मक वर्णन हमें बराहउपनिषद् में मिलता है ।

पुंखानुपुंखविषयेक्षण तत्परोऽपि ब्रह्मावलोकनधियं न जहाति योगी ।
संगीत-ताल-लय-वाद्य-वशं गतापिमौलिस्थ कुम्भपरिरक्षणाधीर्नटीव ॥६

लोक नृत्य में एक विधा आज भी कहीं-कहीं प्रचलित है जिसमें ग्रामीण महिला अपने सिर पर घड़ा रखकर (कभी-कभी एक घड़े के ऊपर दो तीन घड़े और जोड़कर) नाचती है । इस नाच में कुशल नर्तकी जहां एक ओर गीत के शब्दों के साथ, उसका ताल, उसका लय, बजाये जाने वाले वाद्य की ध्वनियों की द्रुत-विलम्बित गति और मन्द-मध्यम-तार स्थिति इत्यादि सभी बाहरी तत्वों पर पूरा ध्यान देकर क्षण-क्षण में उन सबके साथ संगत करती हुई नाचती है, वहीं दूसरी ओर वह अपने व्यक्तित्व में ही अन्तर्निहित घट की रक्षा के प्रति सतत् जागरूक रहती हुयी क्षणमात्र भी अपना ध्यान 'मौलिस्थ कुम्भ' से हटाती नहीं है । यह भी एक प्रकार की अन्तर्मुखता ही है । यद्यपि यह सत्य है कि वह सभी बाहरी तत्वों पर पूरी तत्परता रखती है, फिर भी पूरे नृत्य में उसके ध्यान का वास्तविक मुख्य केन्द्र बना रहता है सिर पर रखा हुआ घड़ा, जो लेशमात्र प्रमाद होने पर गिर सकता है और सारा नृत्य वहीं समूल नष्ट हो जाता । इस बात से इस नृत्य की असाधारणता स्पष्ट है कि इसमें एक प्रकार से बहिर्मुखता एवं अन्तर्मुखता का अद्भुत समन्वय है । हां, अन्य नृत्यों में भी संगीत, ताल, लय, वाद्य-ध्वनि इत्यादि अनेकानेक बाहरी तत्वों के साथ तालमेल रखना अनिवार्य रहता है, किन्तु इस घट-नृत्य का यही विशिष्ट चमत्कार और मौलिक अन्तर है कि इसमें अनेक बाहरी तत्वों के साथ-साथ स्वयं में अन्तर्निहित घट की रक्षा का महत्व सर्वोपरि है ।७ इस प्रकार बाहरी व्यापारों के प्रति अनिवार्य बहिर्मुखताओं के साथ मौलिक अन्तर्मुखता का संतुलन रखना इस लोक-नृत्य कला का परम रहस्य है । बराहउपनिषद के ऋषि-कवि का कहना है एक सिद्ध योगी का जीवन भी ठीक इसी प्रकार का रहता है । अनन्त प्रकार के लौकिक व्यापारों के विक्षेपों की बहिर्मुखता के बीच में अपनी आध्या-

६. बराहोपनिषद् : २-८२ ।

७. आज भी देश के कई भागों में इस नृत्य की परम्परा जीवित है । मैंने स्वयं उज्जैन में आयोजित "आल इण्डिया ओरियन्टल कान्फ्रेन्स" के २६वें अधिवेशन में सन १९७२ में मालवर के एक सिद्धहस्त पुरुष कलाकार के द्वारा इसका एक प्रदर्शन करवाया था, जो वास्तव में रोमांचकारी था ।

त्मिक अन्तर्मुखता का संतुलन रखना ही उसकी जीवन कला की चरम सिद्धि है। स्वामी करपात्री महाराज के जीवन को भी अन्तर्मुखता एवं बहिर्मुखता के ऐसे संतुलन का एक जीता-जागता समसामयिक उदाहरण कहा जा सकता है। यह तो बात ही भिन्न है कि भारतवर्ष के इतिहास में सन्तों एवं महापुरुषों की अति महती परम्परा में ऐसे संतुलन के अनेक उदारहण पूर्व में थे, वर्तमान में हैं और भविष्य में होते भी रहेंगे। इसे कौन इनकार करे, और क्यों? हमारा कहना इतना ही है कि ऐसे सन्त-'मणियों' से गूथे भारत माता के विचित्र कण्ठहार में स्वामी करपात्री जी भी एक आधुनिक महामणि हैं।

प्राचीन पौराणिक युग के हमारे अनेक राजर्षियों के जीवन में भी यह समन्वय था। भारतीय संस्कृति की समग्र भूमिकाओं की मधुर काव्यात्मक प्रस्तुति में सिद्ध-हस्त महाकवि कालिदास ने अपनी रचनाओं में राजत्व एवं ऋषित्व के संतुलन के अनेक आदर्श उपस्थापित किये हैं। राजा दिलीप और वसिष्ठ के मिलन के वर्णन में "राज्याश्रममुनिं मुनिः"[८] कहकर वसिष्ठ मुनि के सामने राजा दिलीप को राज्यरूपी आश्रम के अधिष्ठाता "मुनि" कहा है। शाकुन्तल के अनेक प्रसंगों में महाकवि ने राजा दुष्यन्त को भी ऐसे ही राजर्षि के रूप में उभारा है।[९] पंचम अंक में प्रजापालन की बहिर्मुखी प्रवृत्तियों के बीच में ही एकांत-सुख की सेवा का एक सुन्दर वर्णन है।

> प्रजाः प्रजाः स्वा इव तन्त्रयित्वा निषेवतेऽशान्तमना विविक्तम्।
> यूथानि संचार्य रविप्रतप्तः शीतं दिवा स्थानमिव द्विपेन्द्रः ॥[१०]

कवि कहता है —अपनी सन्तान के प्रति एक पिता का जो स्नेह-वात्सल्य होता है ऐसी ही भावना के साथ अपनी प्रजा के कार्यों का निर्वाह कर उन व्यग्रताओं के कारण मन में उत्पन्न अशांति के परिहार के लिए राजा दुष्यन्त अपने नित्य जीवन का कुछ समय एकांत-सुख में व्यतीत करता था। राजर्षि दुष्यन्त तब निःसन्तान थे और प्रजा ही उनके पुत्र-पौत्र थे। संन्यासी करपात्री जी के लिये भी समग्र भारतवासी ही पुत्र-पौत्र थे। उनके नित्य जीवन के क्रम में भी राजनीतिक सामाजिक व्यग्रताओं के बीच में वेभी एकांत आत्म-साधना के क्षण ढूंढ लेते थे। स्वामी करपात्री जी के विषय में महाकवि का यह वर्णन सटीक उतरता है। इसके विषय में महाकवि के शब्दों में एक लघु परिवर्तन मात्र करना चाहेंगे। "अशांतमनाः" में से अवग्रह हटाकर उसे "शान्तमना" इस रूप में संशोधित करना स्वामी जी के लिये उचित होगा। सम्भवतः वे प्रजा-कार्यों से कभी "अशांत" नहीं हुये होंगे। अतएव उनके विषय में यह कहना भी ठीक होगा कि वे प्रजा का लोक कल्याण कार्य पूरा कर "शांतमनाः" होकर

८. रघुवंश १-५८।
९. 'ऋषिभ्यो नातिभिन्ने राजनि', 'पुण्यः शब्दो मुनिरिति मुहुः केवलं राजपूर्वः' इत्यादि द्वितीय अङ्क के संदर्भ (२-१५) उल्लेखनीय हैं।
१०. अभिज्ञानशाकुन्तल ५-५।

प्रतिदिन एकांत सेवा से अन्तर्मुखता में भी रमते थे ।।११

हमारे देश के प्राचीन सन्त-मनीषियों ने बहिर्मुखी जीवन के क्रिया कलापों के साथ आध्यात्मिक अन्तर्मुखता का आवश्यक संतुलन किस प्रकार रखा इसकी एक झलक हमें ऊपर चर्चित शास्त्रीय तथा साहित्यिक संदर्भों से प्राप्त होती है। किंतु यह सोचना सर्वथा गलत होगा कि यह सब केवल ग्रांथिक-सत्य या सैद्धांतिक विकल्पनाएं हैं और कोरा वाग्जाल है, जिनका व्यावहारिक जीवन के साथ कोई सम्बन्ध-रिश्ता नहीं है। वास्तविकता तो यह है कि ऐसे ग्रंथारूढ़ वर्णन प्राचीन काल के भारतीय मनस्वियों के व्यावहारिक जीवन की ही साहित्यिक प्रतिच्छाया या प्रतिध्वनि हैं। उस प्राचीन परम्परा से अनुप्राणित ऐसी समन्वित जीवनधारा हमारे देश में किसी न किसी रूप में आज तक अक्षुण्ण है। यदि हम इसी शताब्दी के प्रारम्भिक काल के प्रामाणिक इतिहास पर ही दृष्टिपात करें तो हमें ऐसे बहुत से इतिहास-सिद्ध उदाहरण मिल सकते हैं। स्वामी रामकृष्ण परमहंस एवं उनके वरिष्ठ शिष्य स्वामी विवेकानन्द के उदाहरण तो आज भी लोक-स्मृति में बहुत ताजे हैं। इनमें जहाँ श्री रामकृष्ण परमहंस के जीवन में अन्तर्मुखता का पलड़ा पर्याप्त भारी था वहीं स्वामी विवेकानन्द में बहिर्मुखता का पक्ष कुछ अधिक प्रखर था। ये तो प्रामाणिक ऐतिहासिक साक्ष्यों से समर्पित उदाहरण हैं। किंतु हमें यह नहीं भूलना चाहिये कि देश के अनेक भागों में ऐसे अनेक अन्तर्मुख तपस्वियों के उदाहरण थे, आज भी हैं, जो स्वयं के इतिहास लिखने-लिखाने से सर्वथा विमुख हैं। राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी जी ने भी अपने जीवन में इन दोनों धाराओं का अपना एक संतुलन बनाये रखा। सत्याग्रह के आध्यात्मिक आधार पर प्रतिष्ठित रक्तहीन राजनीतिक क्रांति के लिए प्रतिबद्ध उनके जीवन में अन्तर्मुखता की धारा अन्तर्वाहिनी के रूप में सिमटकर रही होगी, किंतु थी अवश्य।

स्वामी करपात्री जी के जीवन में अन्तर्मुखता-बहिर्मुखता का यह सन्तुलत सूत्र श्री रामकृष्ण परमहंस एवं स्वामी विवेकानन्द के बीच का मध्यम मार्ग कहा जा सकता है। यह कहना कुछ कठिन है कि वे बहिर्मुखी में अन्तर्मुख थे, अथवा अन्तर्मुखों में बहिर्मुख। यदि दोनों में से एक विकल्प चुनना ही है, तो मैं कहूँगा, वे थे अन्तर्मुखों में बहिर्मुख। ●●

---

११ अनन्त बाह्यवृत्तियों के अधीन होकर जीवन-यापन करता हुआ योगी जब अपनी अन्तर्मुखता में रमता है, ऐसी स्थिति को योगवासिष्ठ, अक्ष्युपनिषद् आदि ग्रन्थों में योग की सात भूमिकाओं के अन्तर्गत पांचवीं योगभूमिका की संज्ञा दी गयी है। इस सम्बन्ध में अक्ष्युपनिषद् का संदर्भ इस प्रकार है—

अन्तर्मुखतया तिष्ठन् बहिर्वृत्तिपरोऽपि सन् ।
परिश्रान्ततया नित्यं निद्रालुरिव लक्ष्यते ।। (अक्ष्युपनिषद् ३७)

ब्रह्मलीन श्री चरणों में निवेदन

—पण्डित राजनिरीक्षणपति मिश्र, वाराणसी।

श्री काशी विद्वत्परिषद के संरक्षक, श्री धर्मसंघ, रामराज्य परिषद आदि दर्जनों संस्थाओं के संस्थापक, महामनीषी तत्ववेत्ता, अनन्त श्री विभूषित धर्मसम्राट् पूज्य स्वामी श्री करपात्री (हरिहरानन्द सरस्वती) जी महाराज उत्तरायण माघ शुक्ल चतुर्दशी को काशी केदारखण्ड के वेदशास्त्रानुसंधान केन्द्र में श्री गंगा तट पर अपनी इच्छा शक्ति से शास्त्रीय विधि से ब्रह्मलीन हो गये। वे तपोनिधि पुण्यपुंज थे। उन्हें अपने महाप्रयाण का पहले से आभास था। इधर काशी से बाहर की यात्रा बन्द कर खाते-पीते-सोते और घूमते श्री गंगाजल शालग्राम और तुलसी पत्र सदा साथ रख आदेश दे रखे थे कि मेरे तिरोधान के समय केदार घाट का गंगा तट रहे एवं मेरे मुख में उपर्युक्त तुलसी पत्र और शालग्राम का गंगाजल युक्त चरणोदक रहे। प्रातः नित्य की भांति प्रसन्न मुद्रा में स्नान पूजन के बाद श्री दुर्गापाठ सुन रहे थे इसी बीच सहसा बोल उठे कि नीचे मन्दिर में कुशासन बिछाओ और मेरे मुख में उपर्युक्त वस्तुओं को दो। बिना बिलम्ब ऐसा होते ही पद्मासन लगाकर ॐ नमः शिवाय का जप करते तीन हिचकियों के ब्याज मे ब्रह्मलीन हो गये।

यह वज्रपात के समान शोक समाचार विद्युतगति से न केवल काशी परन्तु समस्त भारत में फैल गया। चारों ओर से धर्माचार्यगण, सन्त महात्मा, विद्वान् और श्रद्धालु भक्तजन शोकाकुल हो दौड़ पड़े। उनके अन्तिम दर्शन सजल नेत्रों से करके सभी विलख उठे। उनके पार्थिव शरीर को शव-यात्रा द्वारा कई लाख लोगों के समूह ने श्री केदार घाट के सामने गंगा जी की गोद में सदा के लिये प्रवाहित कर दिया। 'असारे खलु संसारे सारमेतच्चतुष्टयम्। काश्यावासः, सतमंगो गंगाम्भः शिव-पूजनम्।' अर्थात् इस निस्सार संसार में काशीवास, सत्संग, गंगाजल और भगवान् शंकर की पूजा चार ही सार वस्तु हैं। ये चारों पूज्य चरण को प्राप्त थे। वे कुछ ही क्षणों में सबको छोड़कर प्रसन्न मुद्रा में सदा के लिए छोड़ गए।

'अनायासेन मरणं वाल्वस्य तपसः फलम्' के अनुसार बिनाक्लेश शरीर त्याग बड़े पुण्य का फल है। इस प्रकार का महाप्रयाण उनके पुण्यपुंज का निकष है। ऐसे ही महापुरुष के विषय में महाकवि भर्तृहरि ने लिखा है—

सृजतितावदशेष गुणाकरं पुरुष रत्न लंकरण भुवः।
तदपि तत्क्षणभंगि करोति चेदहकष्टम् पण्डितताविधेः॥

अर्थात् अनेक गुणों के निधान एवं संसार के अलंकार ऐसे महापुरुषों को बनाकर उसी समय उनके साथ मृत्यु का संयोजन कर देना सृष्टिकर्ता ब्रह्मा की मूर्खता है। जो भी हो वे चले गये अब उस पावन तपःपूत विग्रह के दर्शन, त्रिकाल त्रिपुर सुन्दरी पराम्बा के साथ अन्य देवों का पूजन, वेणु-गीत और रासपंचाध्यायी से लेकर श्री रामचरित मानस तक के रहस्यों का प्रवचनों द्वारा ग्रन्थिभेदन

पुरस्सर तत्व प्रदर्शन, विचार पीयूष, बेदार्थ परिजात जैसे दर्जनों ग्रंथों के प्रणयन से सरस्वती सदन की सुषमा का समर्थन संस्कृत के कठिन दुर्गम ग्रंथों का विद्वानों को पढ़ाना एवं पूर्णनिष्ठा के साथ शास्त्र पद्धति से आचरण द्वारा सबका प्रशिक्षण आदि गुणगण अब न मिलेंगे। पर सन्त कबीर के शब्दों में यह गति सबके लिए अनिवार्य है जैसा कि उन्होंने कहा है—

आया है सो जाएगा राजा रंक फकीर, देह धरे का भोग है सब काहू को होय।

भगवान् श्री कृष्ण ने गीता में 'जातस्य हि ध्रुवो मृत्युः' कहकर ऐसे समय सबको धैर्य बंधाया है। जैसा लिखा है—

मातुलो यस्य गोविन्द पिता यस्य धनञ्जयः,
सोऽभिमन्यूरणेशेते कालोहि दुरति क्रमः।

अर्थात् जिसके मामा भगवान् कृष्ण और पिता महारथी अर्जुन थे वह अभिमन्यु नवीन वय में ही रणांगण में सदा के लिए सो गया था। अतः काल की गति अटल है ऐसा मानकर विवश हो सन्तोष करते हुये हम श्री विश्वनाथ में विलीन श्री चरणों से प्रार्थना करते हैं कि वे अपने समान तेज पुंज को शीघ्र भेजकर अनाथ सनातन धर्म एवं बिलखते हुये धार्मिक जगत का पथ प्रदर्शन कर सनाथ करें। वे तो 'कीर्तियस्य स जीवति' के अनुसार अमर हैं। उनके पावन चरणों में प्रणति पुरस्सर यही निवेदन तथा श्रद्धांजलि समर्पित है कि—

करपात्र महाराज विश्वनाथ स्वरूपवान,
त्वादशं सत्वरं प्रेष्य देवानुगृहाण नः॥

प्राणी को चाहिए कि परलोक सहायता के लिये भूतों को न सताकर शनैः शनैः धर्म का संचय करे। मनु कहते हैं कि 'परलोक की सहायता के लिये पिता, माता, पुत्र, दारा, धन, जाति आदि भी नहीं ठहरते, वहां तो केवल एक धर्म ही टिकता है। प्राणी अकेला ही उत्पन्न होता है, अकेला ही नष्ट होता है और अकेला ही अपने पुण्यों एवं पापों को भोगता है। मरे हुये शरीर को काष्ट-लोष्ट के समान छोड़कर बन्धुवर्ग चले जाते हैं, उस समय एक धर्म ही प्राणी के साथ जाता है। बुद्धिमान को चाहिये कि अपनी सहायता के लिये धर्म संचय करता रहे।

—करपात्र स्वामी

श्रीः

संस्मरण

-- पं० पट्टाभिराम शास्त्री "पद्म भूषण" ४/७, हनुमानघाट, वाराणसी

पवित्रतम इस भारत में गंगा, यमुना, गोदावरी, सरस्वती, कावेरी आदि पुण्य सलिला जीव नदियाँ बह रही हैं। अत्रि-भृगु-कुत्स-वसिष्ठ-गौतम-काश्यप-आंगिरस आदि गोत्र प्रवर्तक महर्षियों का इस पुण्य भूमि में जन्म हुआ है जिनके हम सन्तान हैं। तुलसीदास, कबीर, रमण महर्षि, शेषाद्रि आदि भक्त, साधु, सन्तों ने इस पुण्यभूमि को भगवन्नाम-प्रचार करते हुए पवित्रित किया है। अतएव निर्गुण नीरूप परब्रह्म सगुण सरूप जन्म लेकर शिष्टपालन दुष्टनिग्रह आदि सत्कर्मानुष्ठान के योग्य यह भूमि बन सकी। प्रति शतक में किसी न किसी रूप से सन्त, महात्मा उद्भूत होकर भारत के गौरव को बढ़ाते रहे हैं। चारों वेदों का सांग अध्ययन-अध्यापन, १८ पुराणों, १८ स्मृतियों असंख्य धर्मग्रंथों आस्तिक-नास्तिक दर्शनों, संख्यातीत काव्य नाटकों, स्तुतिग्रथों एवं अन्यान्य साहित्य ग्रंथों की रचना का सौभाग्य इसी पुण्य भूमि को ही प्राप्त है। वेद शास्त्रों का अध्ययन-अध्यापन, सत्कर्मों का अनुष्ठान-अनुष्ठापन, ज्ञान भक्ति कर्म मार्ग का प्रदर्शन की परम्परा इस पुण्य भूमि के समान विश्व में अन्यत्र चली नहीं है। विभिन्न वर्णाश्रम धर्मों को पालन करते हुये चिरन्तनों ने इस भूमि की अखंडता एवं एकता को सुरक्षित रक्खा है।

परिवर्तनशील कालचक्र ने पूर्वोक्त परम्परा को शनैः शनैः परिवर्तित कर दिया। मानवों ने मानवता को छोड़कर आसुरीवृत्ति को ग्रहण किया है। इस दुर्भाग्यपूर्ण अवस्था को दूर करने हेतु भगवान श्री करपात्र रूप से प्रकट हुये कहना अत्युक्ति नहीं है। १९३५ ई० में जगद्गुरु श्री काञ्ची कामकोटि पीठाधीश्वर शंकराचार्य श्री चन्द्रशेखरेन्द्र सरस्वती जी महाराज काशी पधारे थे। हनुमानघाट में स्थित अपने मठ में रहते हुये जगद्गुरु जी ने एक दिन मुझे आदेश दिया मठ के द्वार पर एक महात्मा खड़े हैं उन्हें अन्दर बुला लाओ। मैंने तुरन्त जाकर देखा कौपीन धारी दन्डी स्वामी जी द्वार को छोड़कर चल दिये। उनके पीछे जाकर मैंने निवेदन किया कि जगद्गुरु जी आप को बुला रहे हैं। स्वामीजी बोले दर्शन हो चुका है कहकर चल दिये। जगद्गुरु के पास जाकर समाचार को कहा तो जगद्गुरु जी कहे कि प्रतिनित्य वे आते हैं द्वार पर खड़े होकर ध्यान करके चले जाते हैं। वे महात्मा हैं। उनके परिचय को प्राप्त करो। वे एक सिद्ध योगी हैं। मैं उन दिनों में छात्र भी था, और गोयनका महाविद्यालय में अध्यापन भी करता था। गुरुजनों से पूछने पर पता लगा कि वे करपात्र स्वामी जी हैं। यह मेरा प्रथम दर्शन है। पूज्य स्वामी जी नारद घाट में एक मकान में और नगवा में रहते थे, मैं उनके दर्शन तथा प्रवचनों को सुनने के लिये जाता था, किन्तु मैं दूर रहकर प्रणाम कर चला आता

आता था । एक समय मेरे भाई (फुआ का पुत्र) श्री चन्द्र शेखर अय्यर जो सुप्रीम कोर्ट के जज थे उनके साथ दर्शनों के लिये नगवा गया था, तब पूज्य स्वामी जी से वार्तालाप हुआ । वे मेरे अध्ययन को सुनकर प्रसन्न हुए आशीर्वाद दिये । मैंने मन में निश्चय कर लिया कि सन्त महात्मा साधक अपनी साधना के बल से आराध्य देवता को ध्यान पूजन करते हुए आराध्य देवता के साथ एकता को प्राप्त कर लेते हैं । जगद्गुरु शंकराचार्य एवं पूज्य पाद करपात्र स्वामी जी का आराध्य देवता श्री महा त्रिपुर सुन्दरी ललिता परामम्बा श्रीराजराजेश्वरी है । तदात्मतापन्न दोनों की एकात्मकता में क्या संशय हो सकता है ।

१६४२ ई० में पूज्य पाद करपात्र स्वामी जी दिल्ली में यमुना की रेती में माघ मास में शत-कुण्डी रुद्रयाग की योजना बनाये थे । उसमें दक्षिण भारत से विशिष्ट वैदिक घनपाठियों के संग्रह के लिए आदेश दिये । तदनुसार लगभग ७५ विद्वानों को जो तैत्तिरीय शाखा के पारंगत थे बुलाकर ले गया था । पूज्यपाद स्वामी जी मुझे क्रम द्रष्टा के रूप में नियुक्त कर जप पारायण हवन आदि को सम्हालने का आदेश दिये । दस दिन व्यापी अनुष्ठान था । उस समय पूज्य स्वामी जी के वैभव को मैंने अनुभव किया । स्वाध्यायाध्ययन ब्राह्मण के वाक्यशेष में कहा है कि वेद पाठियों के लिये पयःकुल्या, घृत कुल्या का प्रवाह होगा । मैंने इस याग में स्वामी जी के तपोबल से पयःकुल्या घृत कुल्या का प्रत्यक्ष अनुभव किया । सचमुच वह अभूतपूर्व याग था और मैं दृढ़ता से कह सकता हूँ कि योगी महापुरुष पूज्यपाद स्वामी जी का वह अनुष्ठान स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिये 'योग' रूप से परिणत हुआ । 'क्षेम' के निमित्त पूज्यपाद ने लगातार कानपुर, प्रयाग, वाराणसी में दैव के आराधन रूप रुद्रयाग का अनुष्ठान कराया । जिनमें विशेषरूप से वेदार्थ चर्चा विद्वानों के द्वारा कराया । इन सभी अनुष्ठानों में मुझे संमिलित होने के लिये पूज्यपाद ने आदेश दिया । म० म० पं० गिरिधर शर्मा, म० म० अनन्तकृष्ण शास्त्री, म० म० चिन्नस्वामी शास्त्री जी आदि दिग्गजों को सम्मिलित कराकर वेदार्थ चर्चा कराये । एवं अष्टग्रह योग के अवसर पर कलकत्ता नगरी में एक विराट यज्ञ का अनुष्ठान कराये जिसमें अतिरुद्र, सहस्रचण्डी, महाविष्णु के समान अनुष्ठान हुये ।

पूज्यपाद एक सिद्ध महात्मा थे । आप की अपने तपोबल से सभी दर्शनों शास्त्रों में अप्रतिहत गति थी । इनके प्रवचनों में मालूम पड़ता था कि महासरस्वती नृत्य करती थी । आप काशी लक्ष्मी-कुन्ड के पास वृन्दावन में जब रहते थे तब चातुर्मास्य के समय मैं पढ़ने के लिये जाता था तब कहा वेद भाष्य एवं दुर्मतों के खंडन रूप से ग्रंथ लिखना चाहिये, लोग वेदार्थ को अपने मनमाने लिख कर प्रचार करते हैं, इसमें ध्यान दो यह आदेश हुआ । स्वयं लिखने लगे । केदारघाट गंगा महल में रहकर चातुर्मास्य के दिनों में 'वेदार्थ पारिजात' नाम के ग्रंथ की रचना हुई । उन दिनों में मैं भी कुछ लिखकर सुनाता था, वे प्रसन्न होकर मुझे लिखने को प्रेरित करते थे ।

कलकत्ता में रहते हुये एक समय मैं परिवार के साथ मसूरी गया था । उन दिनों में पूज्य-

पाद स्वामी जी अपनी तीर्थाटन करते हुये मसूरी पहुँचे। भाग्य विशेष से मैं जहाँ ठहरा था वहीं पूज्य स्वामी जी भी ठहरे थे। मेरे साथ कविराज श्री विद्या के साधक पं० सीताराम शास्त्री भी थे। यह संगम भाग्य से घटा। २०, २५ दिन स्वामी जी चरणों में सेवा करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। तन्त्र-शास्त्र एवं मन्त्रशास्त्र के रहस्यों की पूज्य स्वामी जी विवेचना करते थे। अन्तर्मुख से उन्हें विदित हुआ कि मैं बाला एवं पञ्चदशाक्षरी से दीक्षित हूं तो वे अकस्मात एक दिन षोडशाक्षरी का उपदेश देकर पूजन के लिये श्री यन्त्र एवं नर्मदेश्वर देकर अनुगृहीत किये। मेरी पत्नी एवं कन्याओं को बाला का उपदेश किये। 'पुण्यः पुण्येन भवति' शास्त्र से पूज्य स्वामी जी के मसूरी आगमन से मैं तथा मेरा परिवार धन्य हुये। कविराज पं० सीताराम शास्त्री धन्य-धन्य हुये क्योंकि पूज्यपाद स्वामी जी के कर-कमलों से अभिषिक्त होने का सौभाग्य प्राप्त किये। मैं इस अभिषेक से वंचित रह गया।

पूज्यपाद श्री स्वामी जी को मैंने विविध दृष्टिकोण से अनुभव किया है, वे अन्तर्मुखी थे 'एकस्मिन् विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवति' का वे आश्रय थे, एक ओर सनातन धर्म प्रचारक होकर भक्ति एवं ज्ञान मार्ग का उपदेशक थे, दार्शनिक तत्त्वों से परिचित होकर महालेखक थे, हृदयंगम प्रवचनों से मूर्तिमान श्रीकृष्ण को श्रोता सामाजिकों के सामने खड़ा कर देते थे, कर्म, भक्ति-ज्ञान योगी के लक्षण उनमें समन्वित थे। आजकल की भयंकर भारत स्थिति के लिये महापुरुष पूज्य स्वामी जी की बहुत ही आवश्यकता है। मैं श्री विश्वनाथ से प्रार्थना करता हूं कि ब्रह्मलीन पूज्यपाद स्वामी जी के संस्मरण इस भयंकर स्थिति से पवित्र भारत को बचावें। मेरा दृढ़ निश्चय है कि भगवत्तत्त्व की अपेक्षा भाग-वतों का संस्मरण अधिक बलवान् है। मैं भक्तजनों से अनुरोध करता हूं कि पूज्यपाद स्वामी जी के नाम से एक पीठ की प्रतिष्ठा करें ताकि जनता को प्रेरणा मिलती रहे। ●●

मूर्ति पूजा

—एन्, एस्, रामानुजताताचार्यः
प्रधानाचार्यः, केन्द्रीयसंस्कृतविद्यापीठम्, तिरुपतिः

(प्रस्तुत निबन्ध में सनातन धर्म के महत्त्वपूर्ण विषय 'मूर्ति पूजा' के शास्त्रीय पक्ष का प्रतिपादन श्रीयुत आचार्य जी ने बड़ी प्रामाणिकता के साथ करते हुये इसे सनातन धर्म मार्तण्ड धर्मसम्राट् स्वामी करपात्री जी महाराज को ही समर्पित किया है, संस्कृतज्ञ पाठकगण रसानुभूति करें—सं०)

[जगद्विख्यातान् श्री स्वामी करपात्री जी महाराजानधिकृत्य को वा भारतीयो न वेद। ते हि न्यायमीमांसादिसकलशास्त्र पारंगताः वेदेषु सर्वेषु कृतभूरिपरिश्रमाः करतलामलकीभूतेतिहास-पुराणधर्मशास्त्रसारार्थाः विरचितनैकप्रबन्धाः उपन्यास प्रवचनादिना संतोषित सहस्राधिकसंमिलित-श्रोतृवर्गाः तीर्थयात्रया अनुगृहीतसकलभारतीयजनाः व्यराजन्त। आकारतो विषयतश्च महान् वेदार्थ-पारिजाताभिधानः प्रबन्ध एक एव साक्षी तेषां माहात्म्यमवगन्तुम्। स्वामिनां स्मारकेऽभिनन्दनग्रंथे-ऽहमपि लघुमिमं निबन्धं समर्प्य कृतार्थीभवितुमिच्छामि।]

पुण्यतमेऽस्मिन् भारतदेशे सर्वत्र ग्रामेषु नगरेषु च देवालयाः बहवो विराजन्ते तत्र चानेक-विधा देवाः मूर्तिरूपेण स्थिताः पूज्यन्त इति चायं क्रमः चिरंतनोऽनुवर्तत इत्यत्र न कोऽपि संशयः। अथापि कतिपयानां दुर्वासनादूषितान्तःकरणानां संदेहस्यापनयाय मूर्तिपूजायाः प्रामाणिकत्वमत्र निबन्धे प्रतिपादयामः।

सर्वत्र परिपूर्णस्य भगवतः परिच्छिन्ननामरूपादिकल्पनपुरस्सरं समाराधनं प्रायः सर्वाभ्युप-गतमेव। वैष्णवा वदन्ति विष्णुरेव परमं दैवतम्, अन्यानि दैवतान्यङ्गभूतानीति। एवमेव शैवाः शाक्ता-श्च स्वं स्वं दैवतम्। तत्तन्मतस्थापनाय युक्तिवादान् उच्चावचान् कुर्वन्ति च। इदं सर्वमनादृत्य सामा-न्यतो मूर्तिपूजनं प्रामाणिकं न वेति प्रथमतः विचारयामः। मूर्तिपूजनं प्रामाणिकम्, अवश्यकर्तव्यम्, अनन्तफलसाधनम्, मोक्षपर्यन्तश्रेयः परम्परावाप्तिहेतुः, सर्वपापक्षयकरम्, सर्वमङ्गलप्रदायकम्, भगवतो निरतिशयसंतोषजनकं च इत्येवास्माकं सिद्धान्तः। अत्र बहूनि प्रमाणानि उपलभ्यन्ते। प्रथमतस्तावत् प्रमाणद्वयमुदाहरामः—

(१) यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति।
तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम्॥

इति भगवतः गीता। नानाविधासु भगवतस्तनुषु एकैकस्य एकैकस्यां तन्वां भक्तिविशेषः पूर्वसंस्कारवशात् जायते। तदर्चने च स प्रवर्तते। सर्वमिदं भगवतः संमतमेव, न किंचिदनभिमतम्। देवताया नाम्नि रूपे वा आराधनप्रकारे वा यो भेदः परिदृश्यते तत्रानादर एव भगवतः। यथाकथंचित् देवताराधनं सर्वैरपि कर्तव्यमेवेत्यत्रैव भगवतः कृष्णस्य दृढतरोऽभिसन्धिः। साक्षादेव स्वस्मै क्रिय-

माणमर्चनं स्वयमेव स्वीकरोति, स्वशरीरभूतान्यदेवताविषयकमाराधनं तत्तदन्तर्यामी भूत्वा अङ्गी-करोति। अतः सर्वस्यापि देवतासधनपरस्य स्वोपात्तप्रकारपरिपालने अविकलां श्रद्धां भगवान् विदधाति—कथं नु अयं विग्रहाराधनसंप्रदायः अविच्छिन्नः उपर्युपरि शतसहस्रगुणो वर्धेतेति : श्रीरामायणेऽपि भगवतः श्रीरामचन्द्रस्यापीममेव भावमध्यक्षयामः—

'यदन्नः पुरुषो भवति तदन्नास्तस्य देवताः' (रामा० अयो०)

इति वदतः। 'यदेवाराधकस्य मनुष्यस्यादनीयत्वेन प्राप्तं वस्तु तदेव तदाराध्यानां देवतानामप्यदनीयम्' इति अस्य श्लोकस्यार्थः। स्वकृतकर्मानुसारेण निम्नोन्नते मनुष्यवर्गेकश्चित् किंचिदत्ति अन्योऽन्यत् उत्कृष्टं च निकृष्टं च। अविकल्पित एकोंऽशः अत्र सर्वत्रानुवर्तमानोऽस्ति। सर्वोऽपि जनः स्वस्यान्नं स्वभगवते निवेद्यैवानन्तरमश्नाति। सोऽपि भगवान् सर्वशक्तः अवाप्तसमस्तकामः धनाढ्येन समर्प्यमाणं सोपस्करं दधिमधुघृतादिसंपन्नं नैवेद्यजातं,सर्वगुणहीनं कोद्रवक्वाथादिकं च दरिद्रेण समर्प्यमाणं विनैव तारतम्यं परमसंतोषेण स्वीकृत्य आराधकमनुगृह्णाति। विग्रहरूपेण भगवतः अर्चावतारं मनसिकृत्यैव एवमाराधनप्रकारं भगवान् रामचन्द्रः प्रतिपादयति। स्वयं च

'श्रीमत्यायतने विष्णोः शिश्ये नरवरात्मजः।
सह पत्न्या विशालाक्ष्या नारायणमुपागमत्॥ (रामा० अयो०)

इति विग्रहाराधनमनुष्ठानेन दर्शयामास।

वस्तुतत्त्वे इत्थं सुनिश्चिते सत्यपि केचित् महनीया मेधाविनो मार्गदर्शिनः महर्षयोऽत्र विप्रतिपद्यन्त एव। पूर्वमीमांसादर्शने देवतानां विग्रहवत्त्वं तदवलम्बनेन तदाराधनं च नवमाध्याये निराकृतं पश्यामः।

"देवता वा प्रयोजयेदतिथिवत् भोजनस्य तदर्थत्वात्' (पू. मी. सू. ९-१-४-१)

इति सूत्रेण पूर्वपक्षः प्रस्तूयतेऽस्मिन्नधिकरणे। "आर्थपत्याञ्च" "ततश्च तेन सम्बन्धः" इति गुणसूत्रद्वयमप्यत्र पूर्वपक्षोपोद्बलकं वर्तते। अत्र भाष्ये तत्रभवान् शबरस्वामी नाना प्रकारैः 'विग्रहवती देवता, भुङ्क्ते च' इति साधयतितराम्। ततश्च देवपूजात्मकस्य यागादेः तत्तदाराध्यदेवतातृप्तिहेतुत्वमेव। तृप्ता च देवता फलं ददाति। अतो देवतातृप्त्यर्थं यजनमिति पूर्वपक्षः। "अपि वा यज्ञकर्म प्रधानं स्यात् गुणत्वे देवताश्रुतिः" इतीदम् अस्मिन्नधिकरणे सिद्धान्तसूत्रम्। "अतिथौ तत्प्रधानत्वमभावः कर्मणि स्यात् तस्य प्रीतिप्रधानत्वात्" इति सूत्रान्तरं च। पूर्वपक्षे यावता संरम्भेण देवताया विग्रहवत्त्वम् आराधनयोग्यत्वं च साधितं भाष्यकारेण, ततोऽधिकतरेण संवेगेन तत्सर्वं दूषितं सिद्धान्ते। 'नास्ति देवानां विग्रहः, नाप्यर्चनादियोग्यता। अनुष्ठितेन यागादिकर्मणा अपूर्वं जन्यते, तेन च फलम्' इति।

"अभिमानिव्यपदेशस्तु विशेषानुगतिभ्याम्"
"विरोधः कर्मणीति चेन्नानेकप्रतिपत्तेर्दर्शनात्"

इत्यादि ब्रह्मसूत्रैः अदसीया आक्षेपाः परिहृताः। विग्रहादिमत्त्वं अर्चनादियोग्यत्वं च

बटुकृत्वो भाषमाणाः शंकराचार्याः देवतानां प्रतिष्ठापितम् । 'प्रतिमायामिव विष्णोः' इति ब्रह्मसूत्रभाष्ये बटुकृत्वो भाषमाणाः शंकराचार्याः मूर्तिपूजायाः विग्रहाराधनस्य च प्रामाणिकत्वमातिष्ठन्ते । 'फलमत उपपत्तेः' (ब्र. सू.) इत्यधिकरणे शंकरभाष्ये भामत्यां च अपूर्वनिराकरणपूर्वकं विग्रहवत्या देवतायाः प्रसाद एव यागादिफलं प्रसूत इति सविस्तरं निरूपितम् ।

(२) तत्रभवान् निरुक्तप्रणेता यास्काचार्योऽपि निरुक्ते सप्तमाध्यायस्य पञ्चमे षष्ठे सप्तमे च खण्डे इमं विषयं सप्रपञ्चं विचार्य निर्णयति । "स न मन्येत आगन्तूनिवार्थान् देवतानाम्, प्रत्यक्षदृश्य-मेतद्भवति, माहाभाग्याद्देवताया एक आत्मा बहुधा स्तूयते' इत्यादिः पञ्चमः खण्डः । "अथाकार-चिन्तन देवतानां पुरुष विधाः स्युः" इत्यादिः षष्ठः खण्डः । "अपुरुषविधाः स्युरित्यपरम्" इत्युपक्रम्यते सप्तमः खन्डः । नानाविधवेदमन्त्रोदाहरणपूर्वकमिमं विषयं बहुधा प्रपञ्चयन् यास्कः सप्तमखण्डान्ते स्वाभिप्रायं निगमयति—'एष चाख्यानसमयः' इति । आख्यानस्य इतिहासपुराणमन्त्रार्थवादादेः एषः अयं देवताविग्रहस्वीकारवर्णनप्रस्तावः समयः-संप्रदाय इति तस्यार्थः ।

(३) मूर्तिपूजा तावत् भगवतो वेदस्यापि संमतेति निरूपयामः ।

"प्र वः पान्थमन्धसो धियायते महे शूराय विष्णवे चार्चत"

इति ऋग्वेदवाक्यम् । अत्र 'अर्चत' इति पदस्वारस्यात् मूर्तिमद्विष्णुपूजा विवक्षितेति ज्ञायते । तथा हि—'यज देवपूजायाम्' 'अर्च पूजायाम्' इति धातु पाठः । तेन देवमनुष्यसाधारणी पूजा अर्चनेति गम्यते । प्रसिद्धश्च अर्चधातोर्मनुष्य पूजायामपि प्रयोगः, यथा रघुवंशे रघुमहाराजेन कृतायां कौत्समहर्षिपूजायां महाकवेः कालिदासस्य—

'तमर्चयित्वा विधिवद्विधिज्ञस्तपोधनं मानधनाग्रयामी ।'

इति ! यजनार्चनयोरय भेदः—इन्द्रायेदं न ममेति मानसव्यापाररूपं यत् हविस्त्यजनं तन्मात्रं यजनम् । स्वागतव्याहाराभिनन्दनवन्दनार्घ्यपाद्यवस्त्रगन्धधूपदीपादि बहु व्यापारात्मकोपचार-कलापः अर्चनम् । उपचारबुद्धया अक्षत पुष्पादिसमर्पणमात्रे चार्चनव्यवहारो भूयिष्ठं दृश्यते । यथा रघुवंशे

'सुदक्षिणा साक्षतपात्रहस्ता । प्रणम्य चानर्च'

'रत्नपुष्पोपहारैश्च छायामानर्च पादयोः'

इति । एवंविधं चार्चनम् अर्च्ये पुरुषे सन्निहिते प्रत्यक्षदृष्टे च सत्येव संभवति । न ह्यसंनि-हिताय कस्मैचित् केनचित् कदाचित् उपचाराः क्रियन्ते कर्तुं शक्यन्ते वा । अतः संनिहितस्य प्रत्यक्ष-विषयस्य पूज्यस्य तदुचितोपचारकरणमर्चनपदवाच्यमिति शक्तौ निश्चितायां 'लोकावगतसामर्थ्यः शब्दो वेदेऽपि बोधकः' इति पूर्वमीमांसालोकवेदाधिकरणसिद्धन्यायेन ऋक्संहितामन्त्रेषु प्रयुक्तः अर्चधातुः लोकव्यवहारावधारितं स्वशक्यार्थमेव बोधयतीति प्रामाणिकैरभ्युपगन्तव्यम् । एवं सति 'विष्णुमर्चत इन्द्रमर्चत' इत्यादिवेदवाक्यस्य 'संनिहितं प्रत्यक्षदृश्यं तं तं देव पूजयत' इत्येवार्थः । तत्र सूक्ष्मस्य व्यापकस्य देवरूपस्याप्रत्यक्षत्वात् तदधिष्ठितां मूर्तिमर्चत इति वेदपुरुषो मन्यते । तत्सिद्धं मूर्तिपूजनं वेदसंमतमिति । इति शम् ।

"ईश्वर का अभिव्यञ्जक शास्त्र है, शास्त्रों पर विश्वास करके एवं समुचित ढंग से उनका अध्ययन करके उनके अनुसार अनुष्ठान करना और परात्पर पूर्णतम पुरुषोत्तम परब्रह्म की उपासना करना ही कल्याण का मार्ग है।"

× × ×

"जो हलचलें शास्त्रविरुद्ध हों वे पाप एवं त्याज्य हैं। शास्त्रोक्त धर्म के समाश्रयण से ही आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक सब प्रकार की उन्नति एवं सुख-शान्ति प्राप्त हो सकती है। आर्थिक, सामाजिक एवं नैतिक सभी प्रकार के सामूहिक-वैयक्तिक लाभ उसी धर्म से सम्भव हैं।... जो भी शक्तिशाली, प्रभावशाली, मेधावी, स्मृतिसम्पन, नीतिशील, कवि और ज्ञानी हुए हैं, उनका मूल कारण तपस्या, स्वधर्मानुष्ठान और ईश्वर-आराधन ही हैं।"

प्रातः स्मरणीय श्री स्वामी करपात्री जी महाराज

के

वैदुष्य की एक झलक

– **कालिका प्रसाद शुक्ल**, भूतपूर्व आचार्य, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी

शताब्दियों से विदेशी आक्रमणों द्वारा भारत जर्जर हो गया था, दारिद्र्य की प्रभुता के साम्राज्य ने जन-मानस को जर्जर कर दिया था। बड़े-बड़े मेधावी अपने कर्तव्य से मुख मोड़ किसी प्रकार जीवन-यापन कर रहे थे, मैं क्या करूं, मेरा कर्तव्य क्या है, मैं किस देश का निवासी हूं, उसके प्रति मेरा क्या कर्तव्य है, यह विचार कोसों दूर किसी अरण्यानी में विलीन हो गये थे। यह दशा केवल राजनीति के क्षेत्र में ही नहीं प्रत्युत धार्मिक क्षेत्रों में भी हो गयी थी। महान मनीषी भी अपने-अपने घर के कोने में सिमट कर किसी प्रकार काल यापन कर रहे थे। उन लोगों की भी रसना कानूनों के निगड बन्धनों से अभिभूत होकर जड़ता का अनुभव कर रही थी। अधार्मिक अत्याचारों के मेघ की गर्जना कान में अंगुली डाल चुपचाप घर के कोने में बैठ रहने के लिये विवश कर रही थी, 'भारत धर्म प्राण देश है', इससे सभी लोगों को शिक्षा लेनी चाहिये, इत्यादि सूक्तियाँ मनु याज्ञवल्क्य की निजी सम्पत्ति है, यह समझने के लिये जन मानस बाध्य था। कहाँ तक गिनाया जाय ऐसी असंख्य विडम्बनाओं से भारत निगडित होकर जर्जर हो उठा था। अपेक्षा थी किसी विशेष आलोक की, किसी विशेष प्रतिभा की, किसी विशेष निर्भयता की किसी अदम्य शक्ति की।

यह भारत भू, वसुन्धरा के नाम से भी विख्यात है। इसमें विविध रत्न निहित हैं, जो समय समय से आवश्यकतानुसार उद्भूत होते रहते हैं। उपर्युक्त विषम वेला में एक दिव्य प्रकाश हुआ, कालीघटाएं शनैः शनैः तितर बितर होने लगीं, कमल खिल उठे, उलूक अपने अपने घोसलों में अन्तर्हित हो गये, रक्त कौपीन सुशोभित दण्डधारी एक विशिष्ट पुरुष की गम्भीर ध्वनि ने दिशाओं को मुखरित कर दिया, "न भेत्तव्यम्, न भेत्तव्यम्।" जनता ने शांति का श्वास लिया, एक विश्वास मन में आया कि अब हम लोग भारतीय रह जायेंगे। हमारा मूलधन-धर्म सुरक्षित रह जायेगा, आसुरी शक्ति नष्ट हो जायेगी, दैवी सम्पत्ति का अभ्युदय होगा। जन-जन में धार्मिक चेतना समुज्ज्वल हो उठी, हर हर महादेव के नारे ने आसुरी शक्ति का वक्षःस्थल बींध डाला। 'धर्म की जय हो, अधर्म का नाश हो,' इस गगन भेदी दुन्दुभि की ध्वनि ने आसुरी शक्ति के कर्ण-कुहरों को विदीर्ण कर दिया। जन-मानस में एक अपूर्व उल्लास जग उठा। यह कषाय कौपीनधारी, दंडशोभित हस्त, भस्मच्छुरित कपाल, तेजः पुञ्ज पिञ्जरित चतुर्दिक, प्रसन्न मुखकमल थे—स्वामी श्री हरिहरानन्द सरस्वती करपात्री जी महाराज।

जिनके अनभि-भवनीय आलोक ने एक अपूर्व प्रकाश धार्मिक जगत पर फैलाया।

इस महामनीषी ने देश के कोने-कोने में पदाति भ्रमण कर 'उतिष्ठत जाग्रत प्राप्यवरान् निबोधत', 'धर्म एव हतो-हन्ति, धर्मो रक्षति रक्षितः' 'धर्मं न जह्यात जीवितस्यापि हेतोः' यह सन्देश जनता के कर्ण-कुहर तक पहुँचाया। इतना ही नहीं अपितु इसका तात्विक अर्थ समझाकर प्रगाढ़ निद्रा में सोये हुये जनता की निद्रा एवं अकर्मण्यता नष्ट कर कर्तव्य मार्ग पर अग्रसर किया। देश की धार्मिक जनता में एक नयी चेतना आयी, अपने कर्तव्य का बोध हुआ, नया उत्साह हुआ, प्रमाद नष्ट हुआ, हर हर महादेव के नारे से आकाश गूंज उठा रामराज्य परिषद की स्थापना हुयी, जिसका उद्देश्य था—रामराज्य की स्थापना।

इस प्रसङ्ग में एक दो घटनाओं का उल्लेख करना अप्रसाङ्गिक न होगा। जब प्रातः स्मरणीय श्री स्वामी जी धर्म की विजय-वैजयन्ती हाथ में लेकर देश में भ्रमण कर रहे थे, धार्मिक संदेश से जनता को आप्लावित कर रहे थे। अपने यात्रा प्रसंग में एक बार मद्रास पहुंचे। वहाँ जनता ने भाषण देने के लिये स्वामी जी से अनुरोध किया। स्वामी जी की स्वीकृति मिल जाने पर भाषण किस भाषा में हो, इस बात के उधेड़-बुन होने के पश्चात निश्चित हुआ कि हिन्दी में भाषण को यहाँ के कम लोग समझेंगे संस्कृत की अपेक्षा। अन्ततः मद्रास के मनीषियों की प्रार्थना स्वीकार कर स्वामी जी संस्कृत में भाषण शुरु किये। भाषण की भाषा कहीं-कहीं कोमलकांत पदावली युक्त कालिदास का स्मरण कराती थी तो कहीं-कहीं वाण भट्ट की समास समलांकृत लच्छेदार भाषा का। दार्शनिक विषयों का विस्फोरण विचित्र शैली से इस प्रकार प्रस्तुत करते थे कि बड़े-बड़े गहन विषय एक साधारण कहानी जैसे प्रतीत होते थे। भाषण की भाषा इतनी प्रवाहमयी थी कि वहाँ की पंडितमंडली को विवश होकर आपका वैदुष्य स्वीकार करना पड़ा। कतिपय विद्वान इस दृष्टि से आये थे कि स्वामी जी का हिन्दी भाषण अवश्य बेजोड़ है किंतु संस्कृत में भाषण एक आश्चर्यजनक है। अतः उनकी भाषा की अशुद्धि पर कुछ विशेष ध्यान रहता था। यह प्रसङ्ग मुझको विद्वन्मूर्धन्य स्वर्गीय श्री रामचन्द्र दीक्षित ने तब सुनाया था जब मैं उनके साथ वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय में अनुसंधान विभाग में कार्यरत था। मैंने विनीत भाव से कुछ आशंकित हृदय से पूछा कि "माननीय दीक्षित जी ! स्वामी जी के भाषण में अशुद्धियां कितनी रहीं ? दीक्षित जी ने भाव विह्वल होकर कहा कि एक भी नहीं, केवल अरण्य अर्थ में जंगल शब्द का प्रयोग स्वामी जी छूट से करते थे। मैंने कहा कि उत्तर भारत में इस अर्थ में जंगल का प्रयोग बड़े-बड़े विद्वान लोग करते हैं। तब दीक्षित जी ने, जिनको त्रिकांड अमर कोश कंठ था, कहाकि अमर कोश में अरण्य अर्थ के पर्याय में जंगल शब्द नहीं है। मैंने सशंक एवं सरल भाव से कहा अमर कोश में अवश्य अरण्य अर्थ में जंगल शब्द का प्रयोग होना चाहिये। माननीय दीक्षित जी का मेरे ऊपर वात्सल्य स्नेह था ही, उन्होंने कहा कि दिखाओ। मेरे पास माहेश्वरी टीका समलंकृत अमर कोश रखा

था। मैंने झट उसे उठाया और दैवात वही पृष्ठ निकला, जिसमें अरण्य के पर्याय लिखे थे। मूल में जंगल न देखकर मेरे होश उड़ गये, किंतु जब मेरी दृष्टि माहेश्वरी टीका पर पड़ी, जिसमें "जंगलं इत्यपि केचित्" अंकित था। मैं स्वस्थ हुआ और दीक्षित जी का वह उद्‌गार—"तब तो एक भी अशुद्धि नहीं थी।" गद्‌गद् स्वर से मेरी पीठ थपथपाते हुये उन्होंने कहा, जो मुझे आज भी स्मरण है।

एक दूसरे प्रसंग का उल्लेख करना भी अनुचित नहीं जान पड़ता। श्रीमद्भागवत में श्री राधा का कहीं भी उल्लेख नहीं है यह विषय पंडित मण्डली में बहुत जोर पकड़ा हुआ था, और इस पर कल्पनाएं और समाधान विद्वानों द्वारा किये जा रहे थे। स्वामी जी ने नारद घाट पर अपने चातुर्मास्य के प्रसंग में भागवत प्रवचन में एक दिन इस विषय पर चर्चा प्रारम्भ कर दी, उसके समाधान में श्रीमद्भागवत के "तातौ" इस शब्द की व्याख्या करते हुये "तातश्च ताता च" इस प्रकार एक शेष कर राधा शब्द का उल्लेख "ताता" शब्द से है यह सिद्ध कर दिया।

इस प्रकार के अनेकों उदाहरण पंडित मंडली में आज भी चर्चा का विषय बने हुये हैं जिसका उल्लेख एक बृहत पुस्तकाकार में हो सकता है। मैं इस छोटे से लेख में श्री स्वामी जी के चरणों में अपना मस्तक झुकाता हुआ विराम कर रहा हूं।

"दुनिया में जितने जन्तु हैं वे सब भगवान के ही अंश हैं। 'सियाराममय सब जग जानी।' इस भावना के बिना काम नहीं चलेगा। इसका अर्थ यही है कि यदि तुम दूसरों से न्याय चाहते हो, तो दूसरों के साथ न्याय का व्यवहार करो। धर्म संघ इसी पर जोर देता है। लोक मान्य तिलक जी भी कहते हैं कि 'शास्त्र को न माने, तो भी अहिंसा को मानना पड़ेगा। सारांश—हम किसी को भी न सतावें और दूसरा हमें न सतावे। यह अन्तर्राष्ट्रीय नियम बनना चाहिये कि एक दूसरे को न सतावे।"

—करपात्र स्वामी

महान् त्यागी एवं तपस्वी

—सुप्रसिद्ध विद्वान् श्री आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी

(यह लेख द्विवेदी जी ने १६७६ में महाराज श्री की पावन जयन्ती के अवसर पर लिखा था)

पूज्य स्वामी करपात्री की महान् त्यागी, तपोनिष्ठ महात्मा हैं। उनकी विद्वत्ता और वाग्मिता से सभी परिचित हैं। साधारणत: वीतराग महात्मा लोग लोक जीवन से दूर रहते हैं -'प्राय देव-मुनय: स्वविमुक्ति हेतो: मौनं चरन्ति विजने न परार्थकामा।' परन्तु स्वामी जी थोड़ा उनसे भिन्न हैं। वे धर्म की रक्षा करने के लिए निरंतर समाज को प्रेरणा देते रहे हैं। मैं उनके बहुत निकट संपर्क में नहीं जा पाया परन्तु उनकी कथा में कभी-कभी शामिल हुआ हूँ और उनके युक्तितर्कपूर्ण शास्त्रीय प्रवचनों से प्रभावित हुआ हूँ। स्वामी जी की विद्वत्ता और धर्म-निष्ठा का मेरे मन में बहुत आदर है।

स्वामी जी बहुत दृढ़ संकल्प के व्यक्ति हैं। उनका शास्त्रों के ऊपर पूर्ण अधिकार भी है और अडिग विश्वास भी है। वे धर्म को किसी प्रकार के रहस्यात्मक अनुभूति के रूप में ही नहीं मानते, वैयक्तिक और सामाजिक आचरणों के साथ अविच्छेद्य भाव से संलग्न मानते हैं। इन धर्म-संगत आचरणों को वे गतिशील और परिवर्तनशील नहीं मानते बल्कि स्थिर और शाश्वत रूप में स्वीकार करते हैं, ऐसी मेरी धारणा है। यह निष्कर्ष मैंने उनके कुछ थोड़े से प्रवचनों को सुनकर ही निकाला है। आजकल सामाजिक व्यवस्था को स्थिर और शाश्वत नहीं माना जाता। जिन बातों को हम लोग परम्परा क्रम से धर्म से जुड़ा हुआ मानते हैं उनके विषय में आजकल की शिक्षा प्रणाली में प्रशिक्षित लोग आस्था नहीं रख पाते। इस शिक्षा प्रणाली को किसी जमाने में उदार शिक्षा या 'लिबरल एजूकेशन' कहा गया था और अब भी उसे वैसा ही समझा जाता है। इसमें धर्म, नीति और सामाजिक व्यवहार आदि को अलग करके सोचने की प्रवृत्ति को बढ़ावा दिया जाता है। इसका परिणाम यह हुआ है कि 'धर्म' को किसी रहस्यात्मक या आध्यात्मिक अनुभूति के रूप में सीमित कर दिया गया है। सामाजिक व्यवस्था और नैतिक आचरण को इस प्रकार की अनुभूति से जोड़ने का कोई प्रयास नहीं किया जाता और अगर किया भी जाता है तो उसे साधारण मनुष्य के लिये सुलभ नहीं किया जाता। स्वामी जी के प्रवचनों को जहाँ तक मैंने समझा है, वे इन सारी चीजों को अलग करने के पक्ष में नहीं जान पड़ते। वे प्राचीन ऋषियों के द्वारा सुझाई गई व्यवस्था को अकुण्ठ चित्त से स्वीकार करने के पक्ष में हैं।

स्वामी जी ने केवल अपने प्रवचनों से ही इस शास्त्र-सम्मत वर्ण और आश्रम की व्यवस्था और धर्माचरण के शुद्ध शास्त्र सम्मत रूप को उजागर करने का प्रयत्न नहीं किया, बल्कि कर्मयोगी की भाँति उसे लोक जीवन में प्रतिष्ठित करने के उपाय भी किये हैं। इस प्रकार स्वामी जी जहाँ एक ओर त्यागी महात्मा हैं वहीं दूसरी ओर लोक-संग्रह के लिये निरंतर प्रयासशील कर्मयोगी भी हैं।

लेकिन इन दोनों रूपों के अतिरिक्त उनका जो तीसरा रूप है वह मुझे बहुत आकृष्ट करता है। कहना यह चाहिये कि उनका तीसरा रूप ही मुझे सबसे अधिक आकृष्ट करता है। यह तीसरा रूप है उनका भक्त रूप। अपनी प्रगाढ़ विद्वत्ता और अक्लान्त कर्मनिष्ठा के आवरण में वस्तुतः स्वामी जी महान् भगवद्भक्त हैं। भक्ति का कोई प्रसंग आते ही उनका वह प्रेमिक रूप सब कुछ को पीछे छोड़कर श्रोताओं को अभिभूत कर देता है। श्रीमद्भागवत उनका अत्यन्त प्रिय ग्रंथ है। उसकी कथा सुनाते समय वे प्रायः भगवान् के परम प्रेमिक रूप में अपने आपको निमज्जित कर देते हैं। स्वामी जी की यह निष्ठा उनके अन्तरतम का सबसे प्रभावशाली पक्ष जान पड़ता है।

स्वामी जी ने प्राचीन भारतीय परम्परा को पुनः प्रतिष्ठित करने के लिये बहुत प्रयत्न किया है। संस्कृत साहित्य का, विशेषकर उसके विचार-पक्ष की, ऐसी युक्तिपूर्ण स्थापना बहुत कम लोग कर सकते हैं। परमात्मा ने ही उन्हें इस शुभ कार्य के निमित्त पृथ्वी पर भेजा है। मैं महान् त्यागी और तपस्वी स्वामी जी को अपनी हार्दिक प्रणति निवेदन करता हूँ।

●●

"अपने सिद्धान्त पर दृढ़ निष्ठा पूर्वक अटल बने रहने से ही संघटन हो सकता है। यदि सर्वत्र झूठ का ही प्रचार हो, तो किसी पर किसी का विश्वास नहीं रहेगा। विश्वास के न रहने पर संघटन या एकमत्य असम्भव है। हृषीकेश के घोर वन में—जहां मनुष्यों का गन्ध तक नहीं—बड़े-बड़े सांड दूर-दूर बैठते हैं, बीच में निर्बल गायें और बछड़े रहते हैं। वे इस तरह अपनी रचना कर वहां डटे रहते हैं कि सिंह तक को हिम्मत नहीं पड़ती कि निर्बल पर आक्रमण करे। अतः बात पर डटे रहने से ही संघटन एवं अस्तित्व की रक्षा होगी।"

—करपात्र स्वामी

प्रात : स्मरणीय पूज्यपाद स्वामी श्री करपात्री जी

—डा० गजानन शास्त्री मुसलगांवकर-भू० पू० मीमांसा,
धर्म-शास्त्र विभागाध्यक्ष, काशी हिन्दूविश्वविद्यालय, वाराणसी।

महान् मीमांसक कुमारिल भट्टपाद और भगवत्पूज्यपाद आद्य शंकराचार्य के पश्चात् वैदिक धर्म एवं भारतीय संस्कृति के प्रति जनजागरण का कार्य महाराज श्री ने ही किया। ऐसे महान् कार्यों को सम्पन्न करना साधारण मनुष्य की शक्ति के बाहर है। जनकल्याणकारी महान् कार्यों के सम्पादनार्थ स्वयं भगवान् ही अपनी 'यदा यदा हि धर्मस्य' की प्रतिज्ञा के अनुसार यथासमय किसी पुण्य पुंजशाली धर्माचरण सम्पन्न तेजस्वी महापुरुष के रूप में अवतीर्ण हुआ करते हैं। अवतारी पुरुष के सभी लक्षण महाराज श्री में उपलब्ध होते हैं। आज कितनी ही शताब्दियों से यज्ञ भगवान् को लोग भूले हुये से थे, किन्तु श्री स्वामी जी महाराज ने सर्वप्रथम राजधानी दिल्ली में यज्ञ भगवान् का विश्वकल्याणकारी मनोहर दर्शन जनता को कराया, तब से यज्ञानुष्ठान के प्रति ऐसा जनजागरण हुआ कि यत्र तत्र प्रति वर्ष अनेकानेक यज्ञ आज तक होते चले आ रहे हैं। जिसके फलस्वरूप आज के कराल काल में भी जनता को अन्न मिल रहा है। महाराज श्री के मुखारविन्द से प्रवाहमयी श्रीमद्भागवत कथा के श्रवण करते समय तो श्री शुकाचार्य की मूर्ति के दर्शन का ही आनन्द आ जाता था। श्रीमद् वृन्दावनधाम तथा वहाँ होने वाली भगवद्लीला की छवि, सरस कथा सुनते समय दृष्टिगोचर सी होने लगती थी। भगवच्चरणारविन्दों के प्रति श्रोताओं के मन में भक्ति का उन्मेष होने लगता था। महाराज श्री के मुखारविन्द से भागवत कथा श्रवण का सौभाग्य जिन्हें प्राप्त हुआ है, सचमुच वे धन्य हैं। बड़े भाग्यशाली हैं, क्योंकि पूज्यपाद स्वामी करपात्री जी महाराज के मंगलमय विग्रह के रूप में ब्रह्मसंज्ञक परमेश्वर के ही उन्हें दर्शन हुये हैं। भगवद्‌वतार स्वामी श्री करपात्री जी महाराज इस वर्तमान युग के महापुरुष थे। इस अवतारी महापुरुष ने समस्त जनता को उसके कल्यार्थ 'श्रीराम जय राम–जय-जय राम' इस महामन्त्र का उपदेश दिया है। उसी तरह 'धर्म की जय हो अधर्म का नाश हो, प्राणियों में सद्‌भावना हो और विश्व का कल्याण हो'—इस चतु:सूत्री कार्यक्रम के द्वारा जनता की भावनाओं का शुद्धिकरण किया है। इतना ही नहीं, किन्तु धर्म निरपेक्ष शासन को भी उसके कर्त्तव्य का बोध कराने हेतु 'गो हत्या बन्द हो, गो की रक्षा हो, गो माता की जय हो, हर हर महादेव' के उद्‌घोष के द्वारा जगाने का अथक प्रयत्न किया है, जिसके फलस्वरूप कोटि-कोटि जनता के मानस ने अब तो गो हत्या बन्द कराने का संकल्प ही ले लिया है। इस संकल्प बल के समक्ष शासन को अब झुकना ही पड़ेगा।

स्वराज्य प्राप्ति के पश्चात् स्वतन्त्रता के बजाय प्रवर्तमान उच्छृंखलता के तूफान को अपने प्रवचनों द्वारा रोकने का प्रयास किया। श्रीमद्‌भागवत कथा के द्वारा लोगों के हृदयों में भगवद्भक्ति को जगाना राष्ट्र के स्वरूप को नष्ट करने वाले मर्यादा विरोधी कानूनों को रोकने के लिए धर्मानुकूल

राजनीतिक प्रवचनों द्वारा भारतीय समस्त जनता को यथेष्ट सचेष्ट किया है। 'मार्क्सवाद और रामराज्य' नामक ग्रंथ की रचना कर तथा भारत राष्ट्र को विदेशी कम्यूनिज्म के उमड़ते प्रवाह में प्रवाहित होने से बचाया। भारतीय राजनीति के यथार्थ स्वरूप से जनता को परिचित कराया। धर्मानुकूल राजनीति ही भारतीय राजनीति है और धर्महीन राजनीति तो विधवा स्त्री के समान है। ऐसी राजनीति सर्वदा निष्फल रहती है और यदि कोई किसी प्रकार से फल हुआ भी तो वह विपरीत नाजायज फल होता है। अपने भारत राष्ट्र में चिरपरिचित रामराज्य के आदर्श को पुनः स्थापना करने हेतु रामराज्य परिषद् नाम की संस्था का निर्माण किया और उसकी सदस्यता की समस्या को ऐसी सहजता से सुलझा दिया कि जिससे मानवमात्र रामराज्य परिषद का सदस्य बन सके। सदस्यता शुल्क रुपया-पैसा न रखकर केवल 'दीनदार और ईमानदार' होना ही रखा गया इस संस्था का उद्देश्य धन बटोरना न होकर एकमात्र रामराज्य का आदर्श स्थापित करना है।

प्रातः स्मरणीय भगवद्‌वतार पूज्यपाद स्वामी श्री करपात्री जी महाराज की नव-नवोन्मेषशालिनी अद्‌भुत प्रतिभा, आश्चर्य चकित कर देने वाली शास्त्रानुकूल तर्कशैली, वेद विषयक वैदुष्य, समस्त दर्शनशास्त्रों में अद्‌भुत अनुपम पाण्डित्य, मन्त्र शास्त्र, तन्त्रशास्त्र, धर्मशास्त्र के गहन कानन में अप्रतिहत गति तथा समय-समय पर झलकने वाली प्रत्युत्पन्नमति एवं अदम्य स्मरणशक्ति व लेखन शक्ति को देखकर तो बड़े से बड़े देशी-विदेशी सभी विचारशील विद्वान् गद्‌गद् हृदय हो जाते हैं।

आराध्यचरण स्वामी करपात्री जी महाराज की धर्माचरणशीलता जन कल्याणकारी दृढ़ सिद्धान्तों की स्पष्टवादिता तो प्रसिद्ध ही है। महाराज श्री की दैनिक जीवनचर्या सभी के लिए अनुकरणीय थी, उनका त्रिकाल स्नान, त्रिकाल भगवदर्चन, नैमित्तिक विशेष पूजन, वेदांतादि भिन्न-भिन्न शास्त्रों का अध्यापन, सभी से मधुर संभाषण करना, सभी से सरल, निर्मल व्यवहार करना, सभी के प्रश्नों का समुचित समाधान करना, शास्त्रीय चर्चा करना, कथा-प्रवचनादि के आमन्त्रण का निषेध न करना उत्तररात्रि में जाग जाना, अनेक स्तोत्रों का नित्य पाठ करना, ब्रह्ममुहूर्त में नित्य परिभ्रमण करना और प्रतिक्षण भगवन्नाम जप करते रहना, स्वल्पाहार करना, योग साधनानुष्ठानादि साधनाएं बड़ी ही प्रशंसनीय थीं जो निरवरोध नित्य यथा समय चलती रहती थीं।

उक्त दैनिक कार्यों के अतिरिक्त लेखन का भी कार्य नियमित रूप से प्रतिदिन चलता था जिसके फलस्वरूप पूज्यपाद स्वामी करपात्री जी महाराज की पवित्र लेखनी से कितने ही ग्रंथों का निर्माण हुआ। उनके सभी ग्रंथ, तर्क की कसौटी पर कसे हुये और प्रमाण परिप्लुत मार्मिक विचारों का प्रतिपादन करते हैं। अभी अभी दो वर्ष हुये हैं 'वेदार्थ—पारिजात' नाम का एक विशालकाय ग्रंथ दो भागों में प्रकाशित हुआ है, धार्मिक विद्वानों के लिए वस्तुतः यह पारिजात अर्थात कल्पवृक्ष ही है। नास्तिक एवं दाम्भिक व्यक्तियों द्वारा किये जाने वाले आक्षेपों का मुँह तोड़ उत्तर देने वाला यह ग्रंथ एक अजेय ब्रह्मास्त्र ही है। इसके, मनन, चिंतन करते रहने से बुद्धि की सूक्ष्मता, सद्‌विचारों की पुष्टता, तर्क शक्ति की प्रगल्भता प्राप्त होती है तथा शास्त्रार्थ समरांगण में विजय श्री का लाभ निश्चित रूप से

होता है। किन्तु जो लोग, गुरुसेवापूर्वक ससम्प्रदाय शास्त्रों का अध्ययन नहीं कर पाये किन्तु अपने मन
ही मन-माने ढंग से वेदों और शास्त्रों की पुस्तकों को बांचकर वेद और शास्त्रों के पारगामी विद्वान
अपने को समझते हैं, वे पण्डितम्मन्यता के ज्वर से ग्रसित होकर गोमाता के स्तन पर चिपके हुये गोचिड़
चमोकन या चिकनी) नामक कृमिविशेष के तुल्य से पारिजात से ज्ञानामृत का लाभ नहीं ले पाते।
तथापि यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है। भले ही गोमाता के दुग्धामृत से सम्पूर्ण विश्व लाभान्वित
होता है, किन्तु स्तन पर जमा हुआ भी उक्त कृमिविशेष अपने दुर्भाग्य से उस स्तर से दूध का एक कतरा
भी नहीं पाता, उसे जहाँ-तहाँ रुधिर ही रुधिर मिलता है।

वेदार्थ परिजात की तरह भक्ति-सुधा ग्रंथ के द्वारा भक्ति भागीरथी के निर्मल पावन प्रवाह में
निमज्जन उमज्जन का सौभाग्य सभी के लिये सुलभ कर दिया है। तथा चातुर्वण्य संस्कृति विमर्श, वेद
स्वरूप विमर्श, अहमर्थ और परमार्थ सार आदि ग्रंथों की रचना के द्वारा वर्णाश्रम संस्कृति के यथार्थ
स्वरूप का ज्ञान, एवं तत्वज्ञान और वेद के विराट स्वरूप का दर्शन बुद्धिमान जिज्ञासुओं के लिये सुलभ
करा दिया गया।

ऐसी सर्वतोमुखी प्रतिभा की दैवी सम्पत्ति साधारण मनुष्य को प्राप्त नहीं रहती, वह तो
भगवद्वतारी दिव्य देहधारी सन्त महापुरुष को ही सुलभ रहती है। दिव्य शक्तियों के साथ ही सन्त
भगवद्भक्त. महापुरुषों की उत्पत्ति होती है। वे परमेश्वर के ही अंशावतार रहते हैं। जनकल्याणार्थ
ही साक्षात् परमेश्वर अपनी दिव्य शक्ति के साथ स्वामी जी जैसे महापुरुष के रूप में अवतीर्ण होते हैं और
निर्धारित कार्य को सम्पन्न कर पुन: अपने मूल स्वरूप को प्राप्त कर लेते हैं।

आज हम लोगों के बीच में से पूज्यपाद अनन्त श्री विभूषित स्वामी करपात्री जी महाराज
का दिव्य पार्थिव शरीर सदा सर्वदा के लिये ब्रह्मलीन हो गया है। अब हम अपने इन चर्मचक्षुओं से
उनके दिव्य शरीर का दर्शन नहीं कर पा रहे हैं। अब हम विद्वानों के लिये, कोटि कोटि धार्मिक जनता
के लिए कोई अवलंबन नहीं रहने से हम सभी निराधार हो गये हैं, इसलिए अपनी स्वार्थहानि के कारण
आज उनका कोटि-कोटि भक्तगण शोकाकुल हो रहा है।

वस्तुत: पूज्यपाद स्वामी करपात्री जी महाराज तो अशोचनीय हैं, प्रशंसनीय हैं, क्योंकि जो
अपने कर्त्तव्य का पालन करके कृतकृत्य हो जाता है वही अशोचनीय प्रशंसनीय कहलाता है। महाराज
श्री जिस कार्य के लिये अवतीर्ण हुये थे, वह कार्य उन्होंने पूर्ण किया और अपने मूल स्वरूप में पुन: लीन
हो गये हैं। अत: उनके प्रति भक्तगणों को शोक करना कदापि उचित नहीं है। जो लोग माया में
अहर्निश फंसे रहने से कर्त्तव्य का पालन नहीं कर पाते वे शोचनीय हुआ करते हैं, उनके लिये ही
पराधीन लोग शोक किया करते हैं। किन्तु कर्त्तव्य का पालन करने वाले दिव्य महापुरुषों के प्रति
तो श्रद्धाञ्जलि के सुरभित सुमन ही अर्पण किये जाते हैं। अत: पूज्यपाद श्री स्वामी जी महाराज के
चरणों में हार्दिक श्रद्धा-भक्ति के साथ उनका मनश्चक्षुओं से दर्शन करते हुये अपनी श्रद्धाञ्जलि को
अर्पण कर रहे हैं। महाराज श्री स्वामी चरणों की कीर्तिकाया सर्वदा अमर रहेगी।

तत्त्वज्ञ, सुहृद, मित्र, अरि, साधु, असाधु सर्वत्र समब्रह्मतत्त्व का अनुभव करके प्रसन्न रहता है। अखन्ड, अनन्त, कूटस्थ, निर्विकार ब्रह्मतत्त्व के अनुभव होने पर, संसार की कोई स्थिति उसे विचलित करने में समर्थ नहीं हो सकती। जिस लाभ को पाकर उससे दूसरे लाभ की मान्यता नहीं रह जाती, जिसमें स्थित हो जाने पर गुरुतर दुःख भी विचलित नहीं कर सकते, वही तो ब्राह्मीस्थिति है।

सुमेरू विशीर्ण हो जाय, पृथ्वी फट जाय, सूर्य शीतल हो जाय, चन्द्र गर्म हो जाय, संसार में उथल-पुथल हो जाय पर उस तत्त्वदर्शी की शान्ति भंग नहीं हो सकती। भक्त की दृष्टि में सब कुछ भगवान् ही है फिर भला वैरविग्रह से राग-द्वेषादि से उसे क्या, अभिप्राय:। वास्तव में यही परम-शान्ति है।
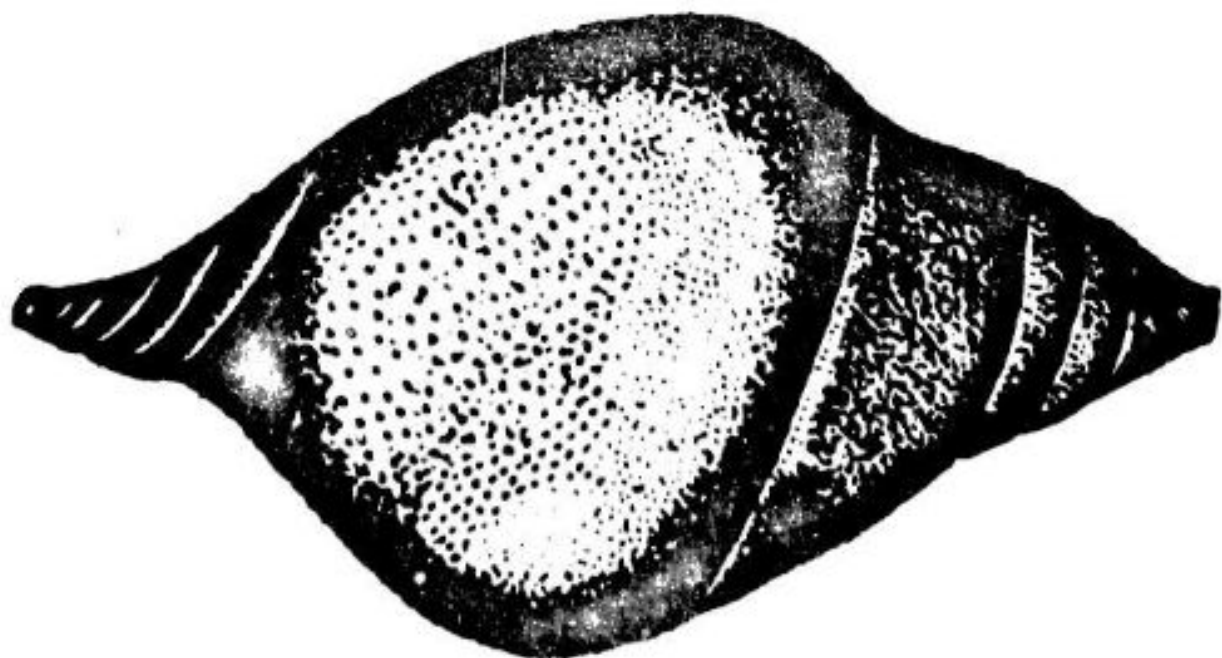
श्रीहरि:

स्वामी जी का अलौकिक व्यक्तित्व

—वैद्य सम्राट श्री वृजमोहन दीक्षित, धूपचण्डी, वाराणसी

स्वामी जी की गणना सामान्य पुरुषों में नहीं की जा सकी। वे दिव्यगुण सम्पन्न विभूति थे भारत के। अधार्मिक वृत्तियां बढ़ रही थीं, चतुर्दिक आक्रमण हो रहे थे सनातन धर्म पर, व्याकुल तथा किंकर्तव्यविमूढ़ थे धार्मिक जन कोई पथ प्रदर्शक व धैर्य बंधाने वाला न होने से, भयभीत सा था सारा धार्मिक समाज। ऐसी विकट परिस्थिति में अवतीर्ण हुये महाराज धर्मरक्षार्थ और अन्तिम क्षण तक अवलम्ब रहे आस्तिक जगत के।

मानव परीक्षा के ३ साधन हैं—(१) सामुद्रिक, (२) गृहस्थितिक (३) लाक्षणिक। रेखा विशेषज्ञ महाराज की हस्त, पाद, मस्तिष्क रेखायें देखकर चकित रह जाते और कहते थे सब रेखायें असाधारण हैं जो सामान्य पुरुषों में नहीं मिलती। गृह स्थिति के पारखी ज्योतिर्विद् भी महाराज की जन्मपत्री देख यही कहते। लाक्षणिक ज्ञान का मुझे स्वत: अनुभव है क्योंकि यह आयुर्वेद का विषय है। उत्तम, मध्यम तथा साधारण पुरुषों की परीक्षार्थ विभिन्न शारीरिक अवयवों की परीक्षा विधि विस्तार में लिखी गयी है। महाराज के लक्षण असाधारण थे जो उनकी महत्ता के परिचायक थे।

असाधारण विद्वत्ता, वक्तृत्वशक्ति, लेखनशक्ति, विचार विनिमय आदि महाराज के सहज गुण थे। यह सब पढ़ने लिखने परिश्रम व अभ्यास से संभव नहीं। किसी विषय का अभ्यास करने से भले ही उस विषय का पारंगत हो जाय कोई किंतु हर विषय का समान ज्ञान परिश्रम साध्य नहीं हो सकता।

वेदमूर्ति स्वामी जी

सन ६२ की बात है। चार दाक्षिणात्य वैदिक विद्वान काशी आये, स्वामी जी से वेद की चर्चा करने। ऋक्, यजु, साम ३ वेदों के प्रसिद्ध विद्वान थे। लोगों ने उन्हें मेरे पास भेज दिया कि वे आप को स्वामी जी मिला देगें। वे आये मेरे पास और स्वामी जी से मिलने की इच्छा प्रकट की, मैंने दूसरे दिन उनसे आने को कह सायंकाल स्वामी जी के पास गया और उक्त विद्वानों की चर्चा की। स्वामी जी मुस्कराये और कल ४ बजे सायंकाल मिलने का समय दिया। दूसरे दिन कौतुकवश मैं भी उनके साथ गया। मुझे भी संदेह था कि स्वामी जी का क्या वेदों में भी वैसा ही अधिकार होगा जैसा अन्य शास्त्रों में है।

लगभग ३ घंटे तक शंका समाधान का क्रम चलता रहा, अन्त में चारों विद्वान महाराज के चरणों में नत मस्तक हो हाथ जोड़ बोले महाराज आप वेदमूर्ति हैं साक्षात यह सब अध्ययन का ज्ञान नहीं। हम लोगों ने भी गुरु परम्परा से सारा जीवन बिता दिया अध्ययन में किंतु आज जो श्रीमुख से व्याख्या सुनी लगा वेद स्वयं अपनी व्याख्या कर रहे हैं।

स्वामी जी पहली बार आये तपः काल में हरिद्वार भगवती भागीरथी के दर्शनार्थ। असाधारण तेज मुखमण्डल पर, वाणी में जादू पा मदन मोहन मालवीय जी मुग्ध हो गये दर्शन कर, और अनुनय विनय कर महाराज को लोककल्याणार्थ राजी कर लिया।

बड़ी विषम परिस्थिति थी उस समय। विदेशी सरकार यज्ञ विरोधी थी। स्वामी जी ने २ फरवरी से ६ फरवरी १६४४ तक दिल्ली में तथा ४ अप्रैल से ११ अप्रैल १६४४ तक कानपुर में शतमुखकोटि होमात्मक महायज्ञानुष्ठान कराये तदुपरांत २६ अक्टूबर से ७ नवम्बर १६४४ तक 'सार्द्ध द्वयकोटि होमात्मक एक विशंत्युत्तर शतमुख सर्ववैदिक शास्त्रीय रुद्र महायज्ञ' का आयोजन काशी में सम्पन्न कराये। उस समय तक के यज्ञों में काशी का यह यज्ञ सबसे बड़ा था। सहस्त्रों वैदिकों ने इसमें भाग लिया था। लाखों की भीड़ रहती थी। स्वामी जी के प्रवचन में रात को १२ बजे तक जन समुदाय मन्त्र मुग्ध सा शांत सुनता रहता था। परन्तु पिछले यज्ञ में कानपुर के कुछ बड़े सेठ यज्ञ में उनका पैसा न लेने से घोर विरोधी हो गये थे, यहाँ भी हिन्दू विश्वविद्यालय विरोधी, नास्तिक वर्ग तो विरोध में कमर कसे ही था उस पर हजारों व्यक्तियों का प्रतिदिन जलपान, भोजन, आवास, कन्ट्रोल का भीषण संकट सभी विपरीत वातावरण था। बिजली, पानी की व्यवस्था के लिये मैं तत्कालीन आयरिश कलक्टर बर्नीड से मिला। वह संस्कृत का अच्छा ज्ञाता था इसलिये मेरी घनिष्ठता थी उससे। उसने जो पत्र दिखाया सरकार का जिसमें आदेश था यज्ञ की कोई सहायता न की जाय। मैंने कहा कलक्टर की हैसियत से कुछ मत करो, किंतु बर्नीड की हैसियत से तो कर ही सकते हो और अन्त तक उसने सभी सहायता की।

गेहूं, चावल आदि का भण्डार भरा था। विरोधियों ने सप्लाई अफसर से शिकायत की "नाजायज ढंग से नगवा में इतना गल्ला इकट्ठा है क्यों नहीं छापामार कर पकड़ते आप।" उसने कहा मैं देखूंगा आप परेशान न हों। वह मुसलमान था, जब कई बार शिकायत लेकर गये लोग और छापा मारने का आग्रह किया तो उसने कहा आप की रामायण में लिखा है यज्ञ जब होता था कुछ विघ्न करने वाले थे। क्या आप उन्हीं में हैं? लज्जित होकर चले गये सब बाद में उसने मुझे बताया सब और आश्वासन दिया। दीक्षित जी! सरकारी तौर पर मैं कोई मदद नहीं कर सकता लेकिन आप लोग जो भी कर रहे हैं निश्चिन्त होकर करिये मैं कतई नहीं बोलूंगा। यह प्रभाव था यज्ञ का और स्वामी जी का। यज्ञ की परिक्रमा करने वालों में मुसलमान स्त्री, पुरुष भी दिखाई देते जो बड़ी श्रद्धा से परिक्रमा करते थे।

यज्ञ में स्वयं-सेवकों की आवश्यकता थी। पं० गंगाशंकर जी मिश्र हिन्दू विश्वविद्यालय के लाईब्रेरियन स्वामी जी के भक्त थे। १००० स्वयं सेवकों की लिस्ट स्वामी जी के सन्मुख रखी और कहा महाराज ये बड़े निष्ठावान परिश्रमी तथा आज्ञाकारी छात्र हैं सेवा करेंगे हर प्रकार यज्ञ की। मैं मन्त्री था प्रबन्ध समिति का बड़ा विरोध किया मैंने इस लिस्ट का। मैंने महाराज से निवेदन किया इनका कोई भरोसा नहीं इन्हें न रखना चाहिये। मिश्र जी के आग्रह पर तथा स्वामी जी की भी रुचि देख विवश मुझे स्वीकार करना पड़ा। किंतु मैं आश्वस्त नहीं था अतः जिन घरों में मेरा चिकित्सकीय संबन्ध था

ऐसे घरों के १०० यदुवंशी धर्मवीर अलग से नियुक्त किये और उन्हें भलीभांति समझा दिया। कि आवास, यज्ञमण्डप, सभा स्थल, भोजनालय सब की भली भांति रक्षा करें इनका कोई भरोसा नहीं रक्षक ही भक्षक बन सकते हैं। वे निष्ठावान धर्मवीर सतत सचेष्ट रहे और उनकी सहायता से ही सम्पूर्ण कार्य निर्विघ्न समाप्त हुआ।

स्वामी जी का तपोबल

एक दिन वही मिश्र जी के निष्ठावान स्वयं सेवकों ने रात १० बजे नारे बाजी आरम्भ की। धर्म का नाश हो, अधर्म की जय हो, विश्व का संहार हो, प्राणियों में दुर्भावना हो। मैं अपने कार्यालय में था दौड़ा गया पूछा क्या बात है? आप लोग यह क्या कर रहे हैं? बोले यज्ञ नहीं यह पाखंड है हम लोग कुली नहीं, भोजन किसी काम का नहीं मिलता। मैंने पूछा आप क्या चाहते हैं? बोले—हमें प्रति व्यक्ति २० रुपये मिल जाय हम अपना प्रबंध कर लेंगे। मैंने कहा—इसके लिये इन नारों की क्या आवश्यकता है? चलिये ४ आदमी मेरे कार्यालय में कल के लिये अभी २००० रुपये ले लीजिये अपना प्रबन्ध कीजिये। वे रुपया लेकर चले गये। २ दिन बाद वही पुनरावृत्ति और जोश के साथ। स्वामी जी भी कोलाहल सुन वहीं आ गये मैंने पुनः पूछा अब क्या है? बोले—हमें रुपया नहीं चाहिये हम मजदूर नहीं अभी भोजन दीजिये। मैंने कहा—रसोईघर का कार्य समाप्त हो गया है, कर्मचारी एकत्र करने व बनाने में समय लगेगा २ घंटा बाद आप भोजन कीजिये मैं अभी प्रबंध करता हूँ किंतु वे किसी प्रकार राजी न हुये नारे लगाते रहे। अन्त में स्वामी जी ने कहा क्यों देर करते हो इन्हें अभी भोजन कराओ, बहुत परिश्रम किया है इन्हें दूध भी पिलाओ। मैं स्वामी जी की ओर देखने लगा। बोले क्या देखते हो, वहाँ अन्नपूर्णा बैठी है भोजन कराओ। मैंने वहाँ बैठे कानपुर के सुदर्शन बाजपेयी को भेजा वे देखकर इतने भाव विभोर हो लौटे कि मार्ग में कैम्पों के खूंटे से पैर छिल गये रक्त स्राव हो रहा था उन्हें ध्यान नहीं। बोले—भाइयो! आश्चर्य है सब झाल भरे हैं सारी सामग्री भी पड़ी है भोजन आरम्भ हुआ कुछ ने सब्जी ही खाना आरम्भ किया कि घट जाय तो हल्ला करें किंतु वह तो अन्नपूर्णा का भंडार था स्वामी जी का तपोबल।

दूध केवल ५०० याज्ञिक ब्राह्मणों के लिये आधा सेर प्रति व्यक्ति के हिसाब से मेरी पर्ची के अनुसार आता व बड़े कढ़ाव में गरम किया जाता था। उस दिन याज्ञिकों को दूध नहीं पहुँचा था क्योंकि स्वयं सेवक आन्दोलन कर रहे थे। दूध पिलाया जाने लगा इन्हें। होड़ लगा दी ८-८, १०-१० पुरवा (कुल्हड़) तक पी गये कुछ लोग कि किसी प्रकार खतम हो जाय और हमें हल्ला मचाने का अवसर मिले। किंतु दर्शकों के आश्चर्य का ठिकाना न रहा केवल २-३ अंगुल कम हुआ कढ़ाव। फिर याज्ञिकों को और धर्म वीरों को भी दूध दिया गया अनेक धार्मिक जनों ने भी इसे स्वामी जी का प्रसाद समझ पान किया। उस समय हजारों व्यक्तियों ने यह चमत्कार देखा और बहुत देर तक महाराज की जय जयकार में आकाश गूंजता रहा।

स्वामी जी का राजनीति में पदार्पण

लोक सभा व विधान सभाओं में अधार्मिक वातावरण देख आप बहुत दुःखी हुये और राम-

राज्य परिषद की स्थापना लोक कल्याणार्थ किया जिसने निर्वाचनों में भाग ले आंशिक सफलता भी प्राप्त की किंतु युग का प्रभाव, वांछित सफलता न मिली जिससे कार्य कर्त्ताओं का उत्साह मन्द पड़ गया और आगे प्रगति न हो सकी। लखनऊ के यज्ञ के अवसर पर हम लोगों ने महाराज से मोटर पर चलने की प्रार्थना की जिसे महाराज ने बड़े संकोच से आरम्भ किया और सारे देश में नवीन धार्मिक चेतना का दर्शन हुआ धार्मिक जगत को।

वेदभाष्य व अनेकों ग्रंथ

महाराज ने अनेकों वेदशाखा संमेलन देश के विभिन्न भागों में आयोजित किये और वेदों के भाष्य का कार्य आरम्भ किया तथा अनेक ग्रंथों की रचना की आपने साम्यवाद पर भी पर्याप्त प्रकाश डाला और उस विषय पर भी एक पुस्तक लिखी।

इस प्रकार महाराज ने अनेक लोकोपकारी कार्य कर धार्मिकजनों का मार्गदर्शन कर उन्हें उत्साहित किया व धैर्य बंधाया। उनके इतने कार्य हैं जिनका समावेश लेख में सम्भव नहीं। धार्मिक जन उनकी कृति से सदा अनुप्राणित होते रहेंगे।

महाराज का महाप्रयाण

कुम्भ का अवसर था। तत्कालीन प्रान्त के मुख्यमन्त्री श्री विश्वनाथ प्रताप सिंह ने कुम्भ के अन्तिम दिनों कुम्भ मेला में हम लोगों की प्रेरणा से एक प्रज्ञा संमेलन आयोजित किया था जिसमें देश भर के प्रमुख विचारक विद्वान आमन्त्रित थे। मेरी ही देखरेख में यह सम्मेलन होने वाला था। शिक्षा निदेशक श्री ठाकुर प्रसाद सिंह जी के कार्यकर्त्ता गाड़ी लेकर मेरे आवास पर आ गये थे मैं प्रयाग जा रहा था किंतु वह फाइल मिलने में कुछ विलम्ब हुआ इसी बीच अलख ब्रह्मचारी जी गाड़ी लेकर आ गये, बोले चलकर स्वामी जी को देख लीजिये। यों तो सब ठीक है प्रातः उठकर नियमानुसार पूजन आदि सब किया है किंतु उसके बाद आसन पर बैठे तो मुखाकृति कुछ परिवर्तित सी लग रही है। मैंने कहा सब ठीक है कोई बात नहीं अभी तो परसों मैंने देखा है। फिर भी मैंने अपने पुत्र चिरञ्जीव शशिकांत दीक्षित को जो मेरे साथ स्वामी जी की चिकित्सा में सहयोगी थे भेजा और और कहा दवा की पेटी ले लो कोई आवश्यकता हो तो दवा दे देना। चले गये और मैं गाड़ी में बैठ ही रहा था कि फोन आया "स्वामी जी नहीं रहे" स्तब्ध रह गया यह सुनते ही और कार्य-कर्त्ताओं से कहा आप लोग जाइये सब देखिये और मैं स्वामी जी दर्शनार्थ पहुँचा केदार घाट। स्वामी जी सदा की भाँति प्रसन्न मुद्रा में भगवान के सामने बैठे थे वेदपाठ हो रहा था। कोई लक्षण नहीं था कि यह निर्वाण मुद्रा है।

इच्छामृत्यु

सुना था कि महापुरुषों की मृत्यु स्वेच्छया होती है, किंतु देखा नहीं था इसलिये विश्वास न

था। लम्बी बीमारी के बाद महाराज पूर्ण स्वस्थ हो गये थे कोई कष्ट न था। नियमित पूजन, अध्यापन, ४ किलोमीटर पैदल घूमना, भिक्षा, निद्रा सब कार्य स्वाभाविक ढंग से चल रहे थे। मैं अब उनकी स्वास्थ्य परीक्षा के लिये प्रति चौथे दिन जाया करता था। एक दिन महाराज ने कहा —दीक्षित जी ! अब यह संसार हमारे रहने योग्य नहीं है। हम तो मृत्यु का आह्वान कर रहे वह क्यों नहीं आते समझ में नहीं आता। मैंने समझा कुछ विराग हो गया है, मैंने कहा 'महाराज, यह क्या कह रहे हैं ऐसा अभी सोचिये भी मत, अभी आप को बहुत दिन रहना है। फिर चौथे दिन जाने पर यही बात दुहरायी मैंने विशेष ध्यान नहीं दिया, सोचा यहाँ के वातावरण से ऊब गये हैं और उसके तीसरे दिन उन्होंने मृत्यु को आह्वान से बुला लिया।

अपूर्व वैदिक निष्ठा

अनेक लोग स्वामी जी की लम्बी व कठिन बीमारी देखकर शंका करते थे, स्वामी जी को ऐसी बीमारी क्यों ? सिद्धि कहाँ गयी आदि। किन्तु यह भी उनकी सामान्य नरलीला थी, उन धार्मिक जनों को पथ प्रदर्शन के लिये जो बीमारी के ऐसे कठिन अवसर आ जाने पर विचलित हो जाते हैं और यह सोचने लगते हैं कि आयुर्वेद से अब क्या होगा पाश्चात्य चिकित्सा कराने लगते हैं। ऐसे लोगों ने देखा कि इस गम्भीर परिस्थिति में भी १ मात्रा भी एलोपैथिक दवा नहीं ली। बेहोश होते-होते कह दिया मुझे किसी भी दशा में सुई व विदेशी दवा न दी जाय। सारे देश में हलचल मच गयी आप की बीमारी की। भारत सरकार व प्रान्तीय सरकार तथा कानपुर, दिल्ली, बम्बई आदि के अनेक भक्त अपने यहाँ के प्रसिद्ध डाक्टर लेकर आये व एक विचार विमर्श चलता रहा स्वामी जी बेहोश पड़े थे बम्बई के एक प्रसिद्ध डाक्टर ने कहा क्यों वैद्य के नाम पर एक महात्मा के प्राण ले रहे हैं इन्हें मस्तिष्क रक्तस्राव है तत्काल लम्बर पन्चर कराकर लें और उचित चिकित्सा हो। मैं बुलाया गया, पुरी तथा बद्रिकाश्राम के शंकराचार्य जी भी कुछ प्रभावित से हो गये थे। मुझसे पूछा आपका क्या मत है ? लम्बर पन्चर से कोई विशेष हानि न हो तो देख लेने में क्या आपत्ति है ? औषध तो खिलाना नहीं है। मैंने घोर विरोध किया। उन डाक्टर साहब से पूछा, आपने कैसे कह दिया रक्तस्राव है बिना किसी परीक्षा के। मैंने तो नाड़ी परीक्षाकर निदान किया है। और पहले ही लिखकर रख दिया है किस दिन क्या परिवर्तन होगा ठीक २८वें दिन होश होगा यह भी लिख दिया है। ब्रह्मचारी अलख जी कापी लाये पढ़ा डाक्टर ने और उनसे पूछा, क्या इसी प्रकार सब हो रहा है। अलख जी ने कहा ठीक इसी प्रकार। मैंने कहा डाक्टर साहब मानव विज्ञान में त्रुटियाँ हो सकती हैं यह वेद है सदा सत्य। इसमें न किसी प्रकार की त्रुटि की सम्भावना है न भूल की। इस प्रकार महाराज ने व्याधि के व्याज से आयुर्वेद की महत्ता स्थापित कर सभी वेदों की प्रामाणिकता का प्रतिपादन किया।

विज्ञान की परिधि से परे स्वामी जी

महाराज के निर्वाण का समय प्रातः साढ़े आठ बजे के लगभग था। वेदपाठ हो रहा था,

लोग विषण्ण हृदय साश्रु नयन खड़े थे। निश्चय हुआ कि पुरी के शंकराचार्य जी महाराज के आने पर उत्तर संस्कार होगा। वे उरई में थे, बहुत शीघ्रता करने पर भी कल ६ बजे के पहले नहीं आ सकते अतः बरफ की सिल्लियां मंगाकर उनमें पार्थिव शरीर रक्खा जाय। मैंने कहा आप लोग महाराज का भी साधारण पार्थिव शरीर समझते हैं। यह अज्ञान है। यह दिव्य शरीर है। कोई विकृति न होगी ऐसे ही रहने दीजिये। दूसरे दिन प्रातः आये शंकराचार्य जी और महाराज का विग्रह सर्वसाधारण के दर्शनार्थ टाउन हाल ले जाया गया। वहाँ नागरिकों की भीड़ उमड़ पड़ी, फूल-मालाओं का ढेर लग गया अपने आराध्य के दर्शनार्थ देहातों तथा दूर दूर से भी काफी संख्या में भक्त आ गये थे। १ बजे के बाद महाराज का पार्थिव शरीर भक्त जनों की भीड़ के मध्य ट्रक द्वारा केदार घाट पर ले जाया गया।

मृत्यु के पश्चात थोड़ी ही देर में शरीर कड़ा होने लगता, चेहरे में विकृति हो जाती व अधिक देर होने पर एक विशेष प्रकार की गंध आने लगती है। इसीलिये मृत्यु होते ही लोग उसके हाथ पैर सिकोड़ देते हैं जिसमें चिता में रखने में कठिनाई न हो। अधिक देर रखने की स्थिति में बरफ की सिल्लियों व रासायनिक द्रव्यों का सहारा लेते हैं किंतु स्वामी जी के शरीर में किसी प्रकार की विकृति न थी। उत्तर क्रिया के समय विधिवत स्नान कराया गया, हाथ पैर वैसे ही मुलायम थे मोड़ने पर कोई कठिनाई न हुई। मुखमंडल में वही कान्ति शरीर में किसी प्रकार की विकृत गंध नहीं। अन्त में गृहस्थों के संस्कार के समय कपाल क्रिया से भिन्न क्रिया संन्यासियों में होती है। शंख के नीचे के भाग द्वारा शिर के मध्य भाग का भेदन किया जाता है। श्री शंकराचार्य जी ने शंख उठाया किंतु भेदन करने का साहस न जुटा सके। शंख उठाकर सबसे कहा आप लोग क्षमा करें यह कठिन कार्य मुझसे न होगा। मैं केवल विधि पूरी करने हेतु शंख का स्पर्श किये देता हूँ और जैसे ही शिर के मध्य में शंख रक्खा वह स्वतः प्रविष्ट हो गया भीतर। स्वाभाविक छिद्र था जिससे ज्ञात हुआ कि महाराज ने ब्रह्मरन्ध्र से प्राण विसर्जन किये हैं।

इस प्रकार से सारी घटनायें महाराज के अलौकिक व्यक्तित्व की परिचायिका हैं। धन्य हैं वे जिन्हें महाराज की सेवा का कुछ अवसर व सान्निध्य मिला। जिन्हें उनके दर्शन व उपदेश सुनने का सौभाग्य हुआ वे भी धन्य हैं। मैं तो अपने को भाग्यशाली व भगवान का कृपापात्र मानता हूँ जिनकी अहैतुकी कृपा से ही महाराज का अनुपम स्नेह मिला, चिकित्सा का अवसर मिला, मेरे माध्यम से आयुर्वेद की प्रतिष्ठा हुयी। अन्त में महाराज के श्री चरणों में नमन कर विराम लेता हूँ। उनकी गुण गणना इस लेखनी द्वारा संभव नहीं।

असित गिरि समं स्यात् कज्जलं सिन्धुपात्रे, सुर तरुवर शाखा पत्रमुर्वी
लिखति यदि गृहीत्वा, शारदा सर्वकालम् तदपि तव गुणानामीशं पारं न याति।

Scanned by CamScanner

धार्मिक जगत की अलौकिक विभूति

—श्रीमदाद्य पंचखंडपीठाधीश्वर महात्मा रामचन्द्र वीर जी महाराज
पंचखंडपीठ, विराटनगर, जयपुर ।

स्वामी करपात्री जी महाराज एक निर्भीक तथा तेजस्वी धर्माचार्य थे । वे ५० वर्ष से अधिक समय तक भारत के धार्मिक अभियानों, धर्म प्रचार व धर्म रक्षा के कार्यों में अग्रगण्य रहे ।

दिल्ली के यमुना तट पर स्वामी जी ने महायज्ञ कराया था उस प्रकार का महायज्ञ भारत में एक सहस्र वर्षों में नहीं हुआ था । इस यज्ञ में उन्होंने सनातन धर्म के प्रचार व प्रसार तथा धार्मिक मर्यादाओं के संरक्षण की एक महती योजना बनायी थी । धर्म संघ के माध्यम से उन्होंने हिन्दुत्व की रक्षा व प्रचार का अभियान चलाया । संस्कृत व संस्कृति के वे सजग प्रहरी थे । संस्कृत के विद्वानों के तो वे समर्थ सहायक ही जो थे ।

गोहत्या के कलंक को मिटाने के लिये जहाँ एक ओर मैंने अनशनों का सहारा लिया वही स्वामी करपात्री जी महाराज ने दिल्ली, मथुरा व कलकत्ता में सत्याग्रह का बिगुल बजाया । मेरे अनशनों का यह प्रभाव हुआ कि कई सरकारों को गोहत्या पर प्रतिबन्ध लगाने को बाध्य होना पड़ा । गोहत्या के विरुद्ध चलाये गये मेरे अनशनों को हमेशा उनका समर्थन प्राप्त हुआ ।

कैदियों की लाठियां भी उन्हें झुका न पाईं

१९६६ में सर्वदलीय गोरक्षा महाभियान समिति के तत्वावधान में गोहत्या बन्दी की मांग को लेकर दिल्ली में विशाल आन्दोलन चलाया गया । स्वामी करपात्री जी ने विशाल जत्थे के साथ सत्याग्रह करते हुये गिरफ्तारी दी । मैंने दिल्ली के केन्द्रीय कारागार में अनशन शुरु किया । स्वामी जी उस समय तिहाड़ जेल में प्रतिदिन दो घन्टे तक मेरे पास विराजकर अपना स्नेह प्रदान करते रहे । जेल में हजारों गोभक्त स्वामी जी के अमृतमय सदुपदेश को सुनने के लिये लालायित रहा करते थे ।

स्वामी करपात्री जी महाराज एक दिन तिहाड़ जेल में हजारों साधु-सन्तों व गृहस्थों को कथा सुना रहे थे कि कारागार के घोर अपराधी बन्दियों से उन पर प्राणघातक हमला कराया गया । अपराधियों ने लोहे की छड़ों से करपात्री जी महाराज तथा साधु सन्तों पर प्रहार कर उन्हें आहत कर डाला था । मैंने स्वयं देखा था कि स्वामी जी के एक नेत्र का आवरण फट गया था। उनकी पीठ पर छड़ों के नीले प्रहार स्पष्ट दिखाई दे रहे थे । भीषण आघात सहकर भी स्वामी जी ने हाहाकार नहीं किया । मैं जब उनसे मिलने गया तब वे मन्द हास और प्रसन्नतायुक्त वार्तालाप करते रहे । गोमाता की रक्षा के लिये, धर्म व संस्कृति के रक्षण के लिये वे बड़ी से बड़ी यातनाएं सहज ही सहन कर लेते थे।

सिद्धान्तों से समझौता नहीं

सरकार ने अनेक साधु नामधारी नेताओं को अपने जाल में फंसाकर भारत साधु समाज का गठन कराया था । ये साधु धर्म विरोधी नेताओं की चाटुकारिता में नहीं हिचकिचाते थे। किन्तु स्वामी करपात्री जी तथा उनके अनुयायी धर्माचार्यों ने कभी भी धर्म विरोधी शासन से समझौता नहीं किया। गोहत्या के लिये जिम्मेदार नेताओं की प्रशंसा में एक भी शब्द निकालकर सरस्वती का अपमान नहीं किया। स्वामी करपात्री जी जहाँ भारत विभाजन का विरोध करते हुए जेल में बन्द हुये वहीं हिन्दू कोड बिल व गोहत्या के कलंक का विरोध करते हुये जेलों में यातनाएं सहन करने को सदैव तत्पर रहे।

स्वामी जी विद्वत्ता की अनोखी खान थे। भारतीय ही नहीं पाश्चात्य दर्शनों का भी उन्होंने गहन अध्ययन किया था। मार्क्सवाद और रामराज्य जैसे महान ग्रंथ की रचना कर उन्होंने यह सिद्ध कर दिया था कि वे संसार के विभिन्न दर्शनों के समान अध्येता तथा तर्क शास्त्री हैं।

स्वामी जी भगवान श्री राम व कृष्ण दोनों के परम उपासक थे। वे महान साधक, त्यागी तपस्वी व निस्पृह विभूति थे। उनका हर क्षण धर्म रक्षा के चिन्तन में व्यतीत होता था। निश्चय ही युग-युगों तक वे धार्मिक जगत में याद किये जाते रहेंगे।

जैसे कभी घटाकाश महाकाश से
वियुक्त नहीं होता: तरंग जल से पृथक नहीं
होता, घटशरावादि मृत्तिका वियुक्त नहीं होते,
कटक, मुकुट, कुण्डलादि सुवर्ण से पृथक नहीं होते,
वैसे ही जीवात्मा कभी भी भगवान से विमुख
नहीं होता। अपने असली सम्बन्धी भगवान्
को भूल जाने से ही प्राणी अनेकानर्थ–
परिप्लुत भवाटवी ही में भटकता है और
दुःख पाता है। जब कभो भी सावधान होकर
वह भगवान् की ओर दृष्टि करता है, प्रभु
उस पर पूर्ण कृपा करके अपना लेते हैं।"
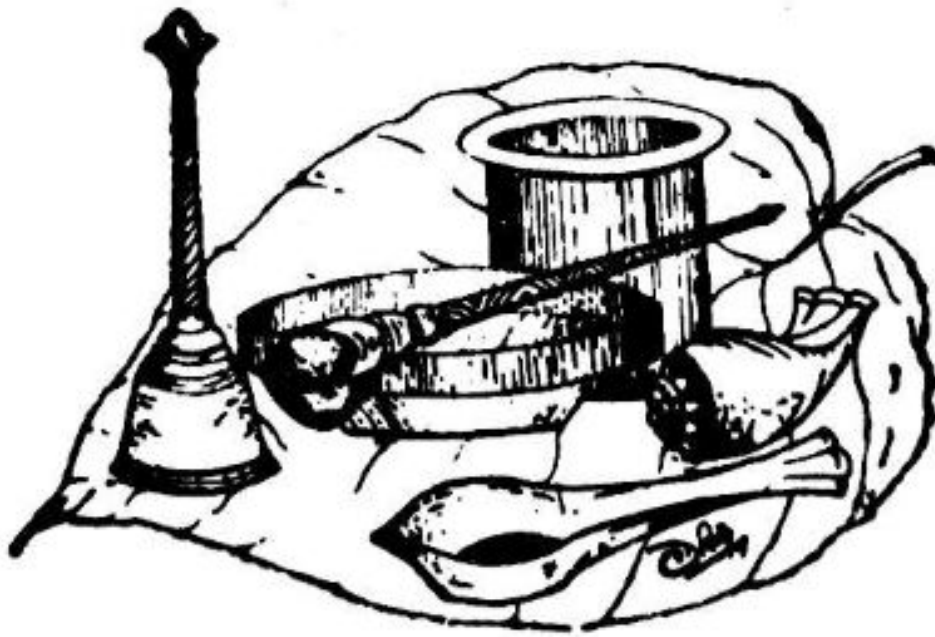
साक्षात परब्रह्म-स्वरूप स्वामी जी

—श्री पं जानकी नाथ शर्मा

परमाराध्य शुद्धज्ञानस्वरूप स्वनामधन्य स्वामी श्री करपात्री जी का वास्तविक जीवन चरित्र लक्ष-कोटि पृष्ठों में भी सम्भव नहीं। वे शुद्ध ब्रह्म ही रहे हैं और त्रिकाल में एक रस रहेंगे। उन्हें शिव-विष्णु-शक्ति आदि का संयुक्त विग्रह मानना ही उचित है। उनकी ज्ञान, कर्म, शुभेच्छा शक्तियों का वर्णन कथमपि शक्य नहीं है। उनकी कृपा शक्ति-उपासना, प्रवचन, लेखन, धर्म संस्थापन कार्य—अवर्णनीय, अद्भुत अचिन्त्य एवं सर्वथादिव्य, लोकोत्तर रहे हैं और रहेंगे। उनमें अनेक गुणों का समावेश था और है। वे साक्षात परब्रह्म परमात्मा ही हैं। जो उनका कार्य है वह जारी रहेगा, पूर्ण होकर रहेगा और जो हो रहा है सर्वथा स्तुत्य है। ●●

वे दिव्य विभूति थे

—डॉ० कर्ण सिंह जी
जम्मू-कश्मीर के भूतपूर्व नरेश

स्वामी श्री करपात्री जी महाराज इस युग के धर्माध्यक्ष तथा धर्मशास्त्रों के प्रकाण्ड विद्वान थे। उन्होंने सनातन हिन्दू धर्म के संवर्धन, संरक्षण के लिए जो सेवाएं कीं, गोरक्षण तथा देववाणी संस्कृत के प्रचार व प्रसार के लिये जो कार्य किये उन्हें कभी भुलाया नहीं जा सकता।

हिन्दू समाज के समक्ष आ रही चुनौतियों के सम्बन्ध में एक बार काशी जाकर मैंने महाराज श्री से विस्तृत चर्चा की थी। धर्म पर किये जा रहे आघातों से उनके हृदय में भारी टीस थी। स्वाधीन भारत में भी गोहत्या जैसे कलंक का जारी रहना, विदेशी धन के बल पर धर्म परिवर्तन के कुचक्र, पृथकतावादी शक्तियों द्वारा भारत को तोड़ने के षड्यन्त्र आदि समस्याओं से वे चिन्तित थे।

मैंने पहली भेंट में ही अनुभव किया कि इस प्रकार की दिव्य विभूतियां युगों बाद पैदा होती हैं। उनके प्रति मेरी हार्दिक श्रद्धांजलि है। ☐☐

भक्तिरस के अलौकिक व्याख्याकार, काशी की अद्वैती संन्यासियों की परम्परा के

मुकुटमणि

—पद्म भूषण आचार्य श्री बलदेव उपाध्याय, वाराणसी

(प्रस्तुत लेख स्वामी जी के जीवन काल में ही सुप्रसिद्ध विद्वान् आचार्य श्रीयुत पं० बलदेव उपाध्याय जी द्वारा लिखा गया था, जिसे भक्ति सुधा की भावमयी भूमिका से संकलित कर, वर्तमानकालिक क्रिया में ही यथावत यहाँ प्रस्तुत किया गया है। सं०)

स्वामी जी की वाणी तथा लेखनी दोनों ही धार्मिक जनता को आकृष्ट करने के लिये अद्भुत क्षमता रखती है। उनकी मधुर वाणी का चमत्कार उनके अद्भुत भाषणों में दृष्टिगोचर होता है, तो उनकी प्रौढ़ लेखनी का प्रभाव उनके प्रमेय-बहुल ग्रंथों में भूरिशः अनुभव-गम्य बनता है। इस तथ्य को दृष्टान्तों के सहारे बताने की आवश्यकता नहीं है।

स्वामी करपात्री जी महाराज का व्यक्तित्व अलौकिक है जिसमें दृढ़ कर्मठता का दीर्घ तपस्या के बल से उपार्जित विशुद्ध ज्ञान का तथा सात्त्विक हृदय में उद्वेलित परमानन्द से आप्लुत भक्ति का मधुमय सामञ्जस्य सद्यः प्रस्फुटित होता है। जिस किसी विषय के विश्लेषण में उनकी लेखनी संलग्न होती है, वह विषय गम्भीर से गम्भीरतम, कठिन से कठिनतम होने पर भी श्रोताओं तथा पाठकों के हृदय में अत्यन्त सारल्य का वेष पहनकर उपस्थित हो जाता है। उनके भाषणों एवं ग्रंथों– दोनों की एक मधुर दिशा है जिन्हें सुनकर एवं पढ़कर व्यक्ति के हृदय में तत्तत् विषयों के प्रति किसी प्रकार के संशय का लेश भी विद्यमान नहीं रहता। इसे दैवी चमत्कार ही समझना चाहिये। शास्त्रीय तथ्यों के विश्लेषण के समय उनकी वाणी जितनी तर्कनिष्ठ एवं युक्तिप्रवण होती है, भक्ति रस के विवरण में वह उतनी ही मधुर, सरल-सुबोध एवं आनन्दप्रसविनी बनती है। 'रासपञ्चाध्यायी' के रहस्यों के उद्घाटन की ओर इसलिये उनकी वाणी स्वतः प्रवृत्त होती है और उसमें नये-नये भावों की अभिव्यञ्जना, नूतन अर्थों की अभिव्यक्ति एवं भगवल्लीला के नवीन आयामों की स्फूर्ति दिखलाकर वह श्रोताओं के हृदय को आनन्द से आप्लावित कर देती है।

स्वामी जी श्रीमद्भागवत के अद्भुत व्याख्याकार हैं, नूतन गूढ़ भावों की सरल भाषा में प्रकटीकरण की कला में उनकी अद्भुत क्षमता है। रासपञ्चाध्यायी की मनोहर कथा प्रति वर्ष चातुर्मास्य में काशी में अथवा अन्य स्थानों पर वे कहा करते हैं और प्रति बार वे नयी-नयी लीलाओं की कल्पना किया करते हैं। राधामाधव की निकुञ्जलीला में प्रवेश कर वे अपनी विलक्षण अनुभूति को सुनाकर विज्ञ श्रोताओं को रसविभोर बना डालते हैं। उनके व्यक्तित्व में मस्तिष्क और हृदय दोनों की उदात्त वृत्तियों के जगाने की, उद्बुद्ध करने की तथा संचारित करने की विलक्षण प्रतिभा है।

श्रीमद्भागवत का गम्भीरआलोडन तथा अनुशीलन मानवों के शुष्क तथा अनुरागविहीन हृदय में सरलता का उत्स उत्पन्न करने में सर्वथा समर्थ होता है - इस विषय में दो मत नहीं हो सकते। श्रीमद्भागवत के अध्ययन तथा मनन से ही भक्तिशास्त्र की पूर्ण प्रतिष्ठा सम्पन्न हुई—यह हम निःसन्देह कह सकते हैं। भक्तिरस का उदय, अभ्युदय, विचार एवं विश्लेषण—सब कुछ श्रीमद्भागवत के ही व्यापक अनुशीलन का परिणत फल है और इस महनीय कार्य के सम्पादन का श्रेय मिलना चाहिये काशी के अद्वैतवेदान्त के मनीषी संन्यासियों को ही, जिनकी अनुकम्पा से भागवत का गम्भीर अर्थ सर्वसाधारण के लिये सरल-सुबोध बन सका। वे तो इसी विश्वनाथपुरी के एक महनीय अद्वैत-वेदान्ती संन्यासी थे— श्रीधर स्वामी। स्वामी जी की 'भावार्थदीपिका' व्याख्या से भागवत का गूढ़ार्थ खुलता है तथा खिलता है। चतुर्दश शती के पूर्वार्ध (१३०० ई०—१३५० ई०) में विद्यमान, नृसिंह के परम उपासक श्रीधर स्वामी काशी की ही विभूति थे। १७वीं शती में विद्यमान मधुसूदन सरस्वती केवल शुष्क ज्ञान मार्ग के अनुयायी अद्वैतवादी आचार्य नहीं थे, प्रत्युत भक्तिरस के व्याख्याता एवं भक्तिस्निग्ध हृदय से सम्पन्न एक महामान्य साधक थे। 'अद्वैत सिद्धि' जैसे अद्वैतज्ञानमण्डित ग्रंथरत्न के प्रणेता होने के साथ ही साथ वे 'भक्तिरसायन' जैसे भक्ति रस को शास्त्रीय प्रामाण्य देने वाले ग्रंथ के रचयिता भी थे। चौसट्ठी घाट पर विद्यमान अपने मठ में रहने वाले मधुसूदन सरस्वती जी काशी की ही प्रतिभाशाली विभूति थे। १८वीं शती में विराजमान स्वामी नारायण तीर्थ ने जहाँ वेदान्त के मूर्धन्य ग्रंथों का प्रणयन किया, वहीं वे 'शाण्डिल्यभक्तिसूत्र' की 'भक्तिचन्द्रिका' व्याख्या लिखकर भक्ति के तत्त्व, प्रकार तथा साधना को वेदमन्त्रों के द्वारा प्रतिष्ठित करने वाले व्याख्याकार थे। वे भी वाराणसी के ही संन्यासी सम्प्रदाय के अलंकार थे। हमारे करपात्री जी महाराज भी काशी के इसी भक्तिमार्गी भागवती अद्वैती संन्यासियों की परम्परा के मुकुटमणि हैं। उन्होंने 'भक्ति रसार्णव' का प्रणयन देववाणी में कर भक्तिरस के स्वरूप का विवेचन गम्भीर शास्त्रीय पद्धति से किया है। यह ग्रंथरत्न पूर्वनिर्दिष्ट मधुसूदन सरस्वती के 'भक्तिरसायन' की शैली में निबद्ध किया गया है, परन्तु उससे अनेक बातों से विलक्षणता रखता है।

'भक्तिरस' का विस्तृत तथा गम्भीर विवेचन इस ग्रंथ का मुख्य उद्देश्य है, परन्तु स्वामी जी को इतने से सन्तोष नहीं है। उन्होंने 'रसस्वरूपविमर्शः' नामक प्रकरण में साहित्यशास्त्र के आचार्यों के द्वारा निर्णीत तथा विवेचित उन नाना मतों का भी विस्तार से विवेचन किया है जिनका उल्लेख काव्यप्रकाश एवं ध्वन्यालोक में किया गया है। उन्होंने भगवान् तथा उनके नाम, रूप, लीला और धाम का विवेचन बड़ी गम्भीरता से भक्तिशास्त्र के निर्णीत सिद्धान्तों की शैली में वैशद्य के साथ किया है। इतना ही नहीं, राधाकृष्ण वेद तथा शास्त्रों के द्वारा भजनीय तत्त्व के रूप में मुख्यतया सिद्ध किये गये हैं - इस तथ्य का विवरण देकर उन्होंने इस विषय के शोधकर्त्ताओं के लिये नूतन सामग्री प्रस्तुत की है साकार भक्ति के विवेचन के संग में निराकार ब्रह्म की प्रतिपत्ति को भक्तिरूप सिद्ध कर स्वामी जी ने 'भक्तिमुक्तिशताधिका' सिद्धान्त की पुष्टि वेद, शास्त्र तथा युक्तियों के सहारे विद्वत्तापूर्ण

ढंग से की है। वेद के तत्त्वों का भी स्थान-स्थान पर उन्मीलन है। प्रसिद्ध पुरुषसूक्त तथा देवीसूक्त के परम तात्पर्य का निर्णय करने में स्वामी जी ने निर्मल प्रतिभा प्रदर्शित की है। निष्कर्ष यह है कि 'भक्ति रसार्णव' 'भक्तिरसायन' की तुलना में अनेक नवीन तथ्यों को अपने में समाविष्ट करने के कारण विशिष्टतापूर्ण चमत्कारी ग्रंथ है—आलोचकों को इस विषय में संशीति रखने का रंचक मात्र भी स्थान नहीं है।

श्री स्वामी जी महाराज द्वारा प्रणीत ग्रंथ—भक्ति-सुधा-भक्तिरसार्णव का ही अनुपूरक ग्रंथ है। दोनों में सम्बन्ध है तथा पार्थक्य भी है। 'भक्तिरसार्णव' भक्ति का सिद्धान्त दर्शन प्रस्तुत करता है, तो 'भक्ति-सुधा' भक्ति के व्यवहार दर्शन की निदर्शिका है। फलतः दोनों ग्रंथों में उपकार्योपकारक भाव विद्यमान है। स्वामी जी का यह मौलिक ग्रंथ उनकी तपःपूत लेखनी का निःसन्देह अद्भुत चमत्कार है। इसमें वर्णित तत्त्व नितान्तहृदयावर्जक, भक्तिरसान्वित तथा परमानन्ददायक हैं। इन लेखों में स्वामी जी के श्रीमद्भागवत के गम्भीर अनुशीलन तथा प्रातिभ-ज्ञान का परिचय पदे-पदे मिलता है। लिखने की शैली बड़ी ही रोचक, आकर्षक तथा हृदयानुरञ्जक है। आध्यात्मिक तत्त्वों के विवेचन में लौकिक उदाहरणों का समावेश कर स्वामी जी महाराज गम्भीर विषयों का निरूपण इतनी सरलता से सीधी भाषा में करते हैं कि वह श्रोता तथा वक्ता के हृदय में हठात् प्रवेश कर जाता है, विषय के अन्तरङ्ग का उन्मीलन कर देता है तथा नवीन तत्त्वोन्मेष में अभूतपूर्व उल्लास का सर्जन करता है। श्रीमद्भागवत के परिचित पद्यों में भी शब्दों के व्युत्पत्तिलभ्य अर्थों का निरूपण कर उनकी वाणी रहस्यमय भावों की अभिव्यक्ति करने में सफल होती है—यह लेखक की स्वानुभूति है। 'रासपञ्चाध्यायी' के गम्भीर भावों का इतना सरस-सुबोध विवेचन लेखक ने कहीं अन्यत्र नहीं देखा जो एक साथ ही तुलनात्मक है, विमर्शात्मक है तथा रसात्मक है। गोपियों के स्वरूप का ही इतना साङ्गोपाङ्ग सरस प्रतिपादन अन्यत्र दुर्लभ है।

तथ्य तो यह है कि अनन्त श्री विभूति स्वामी करपात्री जी महाराज हृदयावर्जिका विमला वाणी के प्रेरक जैसे मनीषी हैं, वैसे ही वे ललित ललाम लेखनी के धनी हैं। वाणी तथा लेखनी का यह मञ्जुल सामरस्य किस विद्वान् को अपनी ओर आकृष्ट करने में समर्थ नहीं होता? वे शास्त्र के मर्म को उन्मीलन करने वाले ऐसे समर्थ वाग्मी हैं जिनके विषय में कहा गया है—'वाग्मी भवति वा न वा।' वे खूसट वेदान्ती नहीं हैं जो वेदान्त के शुष्क तत्त्वों के चिन्तन में अपनी प्रतिभा का उपयोग करता है, प्रत्युत वे रसामृतमूर्ति, सौन्दर्यसारसर्वस्व भगवान् निकुञ्जबिहारी की निकुञ्जलीला के परमाराधक भक्तिरसाप्लुत उपासक हैं जिनकी कमनीय वाणी से भक्तिरस के मधुमय कण बिखर पड़ते हैं उनकी लेखनी की यह अभिनव प्रसूति 'भक्ति-सुधा' मस्तिष्क की वस्तु नहीं है, प्रत्युत उनके हृदय का आनन्दमय उल्लास है। यह दिमागी कसरत नहीं है, बल्कि दिल की उफान है।

सतत प्रवहमान त्रिवेणी

—फूलचन्द्र पाण्डेय

प्रातराराध्य शुचिचरण वेद-विग्रह पूज्य स्वामी श्री करपात्री जो महाराज के रूप में त्याग-तपस्या-वैराग्य, ज्ञान-भक्ति-कर्म, अद्वैत-द्वैत-द्वैताद्वैत, मन्त्र-तन्त्र-यन्त्र, धारणा-ध्यान-समाधि, सत्-ज्योति-अमृत, वैष्णव-शैव-शाक्त, मस्तिष्क-हृदय-प्रज्ञा, लेखन-प्रवचन-कथावाचन, यज्ञ-अनुष्ठान-कर्म-काण्ड, अध्यात्म-समाज-राजनीति प्रभृति अन्यान्य विस्मयी त्रिवेणी-त्रियोगों के पुंजीभूत तेजोमय विश्व-विश्रुत व्यक्तित्व का अवतरण इतिहास में द्रष्टव्य है नहीं। उनके दिव्य-दैवी गुणों का विशद-विस्तृत विवेचन मनस्वी-मनीषी विद्याधरों के उद्धरणीय-संग्रहणीय शिलालेखी लेख-प्रबन्धों से सुधी पाठकों की जिज्ञासा-पिपासा एवं विविधा अध्यात्म-क्षुधा संतृप्त-निवृत्त होगी। महाराज श्री द्वारा विभिन्न विषयों, दिशाओं, क्षेत्रों में प्रदत्त नये आयामों, स्थापित उच्चतम कीर्तिमानों-मानदण्डों का डिण्डिमघोष धर्म, अध्यात्म एवं वैचारिक जगत् में सर्वत्र श्रूयमाण है।

अल्पज्ञ मतिमन्द (अक्ल 'मन्द' ?) अकिंचन मैं इस महती श्रुतिमती विभूति के गुण गण-परिगणन में भी सर्वथा सक्षम-समर्थ नहीं हूँ। तब इस विराट् व्यक्तित्व के किसी भी पक्ष पर कुछ कहना-लिखना उच्च पादप स्थित फल को किसी बौने द्वारा उचक कर तोड़ने जैसा उपहास्य सायास प्रयास ही है—'प्रांशुलभ्ये फले लोभादुद्‌वाहुरिव वामनः'। स्वतः प्रमाण प्रमाणक को याथातथ्य प्रशस्ति-पत्र प्रदान करने की अर्हता-योग्यता कहाँ किसमें है? पुनरपि मूर्द्धन्य मनीषियों द्वारा महाराज श्री की विशिष्ट स्तुतियों में से एक का सश्रद्ध पाठ करने का लोभ संवरण अवश्य नहीं कर पा रहा हूँ—करता हूँ।

हमारे महामति धर्म सम्राट् तन्त्र विद्या में भी कितने निष्णात् पारंगत, उच्च स्थान प्राप्त थे, यह बात बहुशः प्रचलित-परिज्ञात नहीं है। दतिया स्थित पीताम्बर पीठ के परिचय-प्रसंग में विद्वद्वरेण्य डा० विद्यानिवास ने यह स्तवन इस प्रकार किया है—

"तन्त्र का वास्तविक अभिप्राय समझने वाले बहुत कम हुये और उसे अपने जीवन में उतारने वाले और भी कम। मैं दो महात्माओं को तन्त्र में पारंगत रूप में श्रद्धापूर्वक प्रणाम करता हूँ। दोनों ब्रह्मलीन हो चुके हैं। एक तो पूज्य स्वामी जी दतिया (ज्ञातव्य है कि दतिया स्थित पीताम्बरा पीठ के संस्थापक इन स्वामी जी का न तो पूर्वाश्रम का कोई अता-पता था और न संन्यास आश्रम का ही कोई नाम) और दूसरे पूज्य श्री करपात्री जी। अद्वैत सिद्धान्त के विद्वान् दोनों थे, दोनों ने श्री विद्या की विधिवत् साधना की थी, दोनों कठिन तपस्या से तपकर निकले थे। दोनों ने तन्त्र का रहस्य यही समझा था कि सबकी बात सोचो, सम्पूर्ण की बात सोचो, भूमा की बात सोचो, अल्प में सुख नहीं ....."

अन्यच्चैकं वृत्तम् (एक और क़िस्सा)......ब्रह्मवन्दनादि वेदों के वर्तमान युग में पहले

मानसिकता से सर्वथा अपरिचित कुछ विदेशी संस्कृतज्ञों
आध्यात्मिक पृष्ठभूमि-विहीन, भारतीय मानसिकता से सर्वथा अपरिचित कुछ विदेशी संस्कृतज्ञों
(विद्वानों नहीं) ने तथा बाद में प्रायः ऐसे ही कतिपय भारतीयों ने भाष्यकार कहलाने के मोह में मन-
माने शब्दार्थ कर अनर्गल प्रलाप युक्त अनुवाद कर डाले। इन सबने वेदमाता के बाह्याभ्यन्तर सौन्दर्य
स्वरूप को तो विकृत किया ही उसका केशकर्षण जन्य लज्जास्पद असह्य पापापर पर्याय अपमान भी
किया-कराया। वेद शास्त्रों के विप्रकृष्ट ज्ञान की इस दुरवस्था से परिखिन्न अवसन्न उद्विग्न वेदा-
ग्रही शीर्षस्थ विचारकों-विद्वानों ने विनयावनत हो स्वामी करपात्री जी से वेदों के साधना-साधित
प्राचीन आचार्यों के परम्परागत भाष्यों एवं मूलात्मस्वरूप की रक्षार्थ भाष्य लिखने का अनुरोध किया।
करुणार्द्र स्वामी जी ने चिरन्तन महत्त्व के इस गुरुतर कार्य भार को वहन कर वेद भाष्य के भूमिका
भाग 'वेदार्थ पारिजात' शीर्षक बृहत् ग्रंथ का पहले प्रकाशन कराया। स्वभावतः असहिष्णु तथा विरोध-
प्रवृत्ति-ग्रस्त आर्य समाजी बन्धुओं से न रहा, सहा गया। उन्होंने उत्तर स्वरूप 'वेदार्थ कल्पद्रुम
खड़ा कर दिया। मैंने एक सज्जन जो वेदों के अंग्रेजी भाषा में अनुवाद-कार्य में संलग्न हैं, से कहा कि
इस पंक-प्रक्षेपण की क्या आवश्यकता थी तो वह बोले कि करपात्री जी का ग्रंथ खण्डन परक है। अतः
उत्तर तो देना ही हुआ। मैंने बताया कि जादू तो सिर चढ़कर बोल गया—'वेदार्थ पारिजात' तो अन्तर-
राष्ट्रीय स्तर के एक लाख रुपये के सर्वोच्च 'विश्व भारतीय' पुरस्कार से सम्मानित हो गया। अब आप
अपने फल-छाया-विहीन 'कल्पद्रुम' (कल्पित द्रुम!) को विज्ञापन और प्रदर्शन के क्षेत्र से बाहर
कहीं एकान्त कक्ष-कोण में भूमिगत कर उसके अस्तित्व की रक्षा करते रहिये।

इस प्रकार एकान्ततः धार्मिक एवं खण्डन परक ग्रंथरत्न पर उक्त पुरस्कार जिसका चयन
अधिकारी विद्वानों, विशेषज्ञों के निर्णायक मण्डल ने किया, के माध्यम से पूज्य करपात्री जी महाराज
के प्रखर पाण्डित्य, चरम वेद वैदुष्य, उत्कृष्टतम लेखन आदि को विश्व स्तर पर शिरोधार्य स्वीकृति
अथ च मान्यता स्वतः सहज सम्भव हो गई।

महाराज श्री की ज्ञानामृतवर्षिणी, मनस्तोषिणी समलंकृत सरस वाणी-वाग्मिता के रसपान
हेतु तो डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी, डा० बलदेव उपाध्याय, डा० सीताराम चतुर्वेदी सदृश सारस्वत-
समाज श्रोता रूप में उनके प्रवचन, कथा, कथा-आयोजनों में समुपस्थित रहता था। वस्तुतः 'अभिनव
शंकर' के ब्रह्मवर्चस्वी चमत्कारी व्यक्तित्व, ज्ञान-विज्ञान से भरित-पूरित विपुल वाङ्मय, अज्ञानान्ध-
कार संवारक सुधोपम सदुपदेशों की सतत् प्रवहमान त्रिवेणी में अवगाहन कर जनमानस अभीष्ट
पुण्य-प्रसाद-फल भावच्चन्द्र दिवाकर प्राप्त करता रहेगा। उनकी अमल-नवल-धवल दिगन्त व्यापिनी
कीर्ति कौमुदी सदा सर्वदा सत्य सनातन-पथ आलोकित करती रहेगी। □□

प्रकाण्ड विद्वान : श्री स्वामी करपात्री जी

स्वनामधन्य ब्रह्मलीन भक्त रामशरण दास, पिलखुवा ।

धर्म की जय हो, अधर्म का नाश हो, प्राणियों में सद्भावना हो एवं विश्व का कल्याण हो—के उद्घोषक तथा गोरक्षा आन्दोलन के सूत्रधार श्री स्वामी करपात्री जी के नाम से विख्यात दण्डी संन्यासी श्री स्वामी हरिहरानन्द जी सरस्वती देश के उन निर्भीक एवं हिन्दूराष्ट्रवादी संन्यासियों में से थे जिनके प्रति भारत के ही नहीं विदेशों तक के हजारों व्यक्ति श्रद्धाभक्ति रखते थे ।

जन्म-जात वैरागी बालक हरनारायण ने १९ वर्ष की आयु में ही घर छोड़ दिया । वह निकल पड़े किसी योग्य गुरु की खोज में और इसी समय उनकी भेंट प्रयाग के समीप कुरेश्वर नामक ग्राम में स्वामी श्री ब्रह्मानन्द जी सरस्वती (जो आगे चलकर ज्योतिष्पीठ के जगद्गुरु शंकराचार्य हुए) से हुयी । उन्होंने आदेश दिया कि—'तुम साङ्गवेद विद्यालय, नरवर (बुलन्दशहर) जाकर अभी अध्ययन करो एवं शास्त्रों में पाण्डित्य प्राप्त करो तदुपरान्त संन्यास लेना उचित है ।' अध्ययन के उपरान्त हरनारायण ने हिमालय में जाकर घोर तपस्या की तथा कई वर्षों की कठिन साधना के पश्चात् लगभग २४ वर्ष की आयु में पूज्य ब्रह्मानन्द जी सरस्वती जी महाराज से काशी में दण्ड ग्रहण किया । कठिन व्रत पालन करते मात्र कोपीन धारणा करते, कर (हाथ) पर रखकर ही भोजन करते इसी कारण 'करपात्री जी' के नाम से सम्बोधित किये जाने लगे । सर्वत्र इनकी ख्याति फैलने से अनेक विद्वान इनकी ओर आकर्षित हुये जिनमें महामहोपाध्याय पं० गिरधर शर्मा चतुर्वेदी, पं० कालूराम शास्त्री, पं० अखिलानन्द, शास्त्रार्थ महारथी पं० माधवाचार्य शास्त्री आदि के नाम प्रमुख हैं । विश्व कल्याण कामना से स्वामी जी ने अनेक यज्ञानुष्ठान सम्पन्न कराये । सनातन हिन्दू धर्म के संरक्षण के लिये सन् १९४० में 'धर्म संघ' नामक संस्था की स्थापना की । जब स्वामी जी ने देखा कि कांग्रेसी नेता मुस्लिमलीग के साथ गठबन्धन करके भारत को खण्डित कराकर पाकिस्तान बनाने की योजना स्वीकार कर रहे हैं—तो अखण्ड भारत के प्रबल समर्थक स्वामी करपात्री जी का हृदय हाहाकार कर उठा । उन्होंने सम्पूर्ण देश में भ्रमण करके हिन्दू जनता को पाकिस्तान के खतरे से सावधान किया तथा भारत को खण्डित करने के विरोध में प्रदर्शन करते हुये गिरफ्तार कर लिये गये ।

स्वामी करपात्री जी ने भारत के स्वतन्त्र होते ही सम्पूर्ण गोहत्या पर प्रतिबन्ध लगाने की माँग की और २६ अप्रैल १९४७ को उन्होंने गोहत्या बन्द हो, भारत अखण्ड हो के उद्घोषों के साथ संसद भवन पर प्रदर्शन किया उन्हें गिरफ्तार करके लाहौर जेल भेज दिया गया । सत्याग्रह चलता रहा पुनः मथुरा में सत्याग्रह स्वामी जी को पुनः बन्दी बनाकर आगरा जेल में डाल दिया गया । स्वामी जी ने गोरक्षा आन्दोलन में अनेकों बार जेल यातनाएँ सहन कीं ।

कांग्रेसी शासन ने हिन्दुत्व को जड़ से समाप्त कर डालने के लिये हिन्दू कोडबिल बनाने की घोषणा की तो स्वामी करपात्री जी ने अपने अनन्य सहयोगी स्वामी श्री कृष्णबोधाश्रम जी के साथ इस बिल के विरोध में जबरदस्त आन्दोलन चलाया—पुनः उन्हें जेल यातनाएं करनी पड़ीं ।

स्वामी जी का जीवन प्रारम्भ से ही संघर्षपूर्ण रहा है, वह अपने शास्त्रीय सिद्धान्तों पर हिमालय की तरह दृढ़ व्यक्तित्व के महापुरुष थे। वह समझौतावादी नहीं अपितु दृढ़ सिद्धान्तवादी थे। जिस समय 'भारत साधु-समाज' नामक संस्था हिन्दू धर्म विरोधी कांग्रेसी शासन के प्रचार का साधन बनी हुयी थी उस समय स्वामी करपात्री जी निर्भीकतापूर्वक कांग्रेसी शासन की नीति का डटकर विरोध करने में संलग्न थे।

स्वामी करपात्री जी जहाँ शास्त्रार्थ महारथी, ओजस्वी वक्ता एवं प्रकाण्ड विद्वान थे वहाँ उनकी लेखनी में भी ओज था 'मार्क्सवाद और रामराज्य' नामक उनके ग्रंथ ने समस्त विश्व का ध्यान आकर्षित किया है जिसमें सम्पूर्ण पाश्चात्य दर्शनों की अकाट्य समालोचना है।

स्वामी करपात्री जी धर्म और राजनीति को अलग-अलग नहीं मानते। वह धर्म नियन्त्रित राजनीति के प्रबल समर्थक रहे। उनके मतानुसार 'धर्मनिरपेक्ष' का अर्थ 'हिन्दू विरोध' था। प्रधान मन्त्री इन्दिरा गांधी एवं अन्यों ने जब स्वामी जी पर गो रक्षा आन्दोलन की आड़ में राजनीतिक लाभ उठाने का आरोप लगाया तथा स्वामी जी चुनावों की ही उपेक्षा करके दूसरी बार पुनः सत्याग्रह में कूद पड़े और जेल चले गये - आरोप लगाने वालों की आँखें खुल गयीं। स्वामी जी ने सिद्ध कर दिया कि उनकी दृष्टि में गोमाता की रक्षा का महत्व अधिक है, चुनावों का नहीं। जब देवी इन्द्रिरा जी ने स्थान-स्थान पर जाकर यह आरोप लगाया कि—अंग्रेजों के समय गो रक्षा की माँग करने वाले कहाँ चले गये थे—तो स्वामी जी ने तत्काल उत्तर दिया था कि—'देवी जी को यह ज्ञान होना चाहिए—कि १८५७ के स्वाधीनता संग्राम से लेकर १९४६ तक हिन्दू अनेक बार गोरक्षा की न केवल माँग करते रहें अपितु गोहत्यारों के सिर काट-काट कर स्वयं भी फांसी पर चढ़ते रहे। मंगलपाण्डेय, कूकासरदार रामसिंह, करारपुर के वीर गोभक्तों एवं हजारों अन्य गोभक्तों की गाथाएँ प्रधान मन्त्री जी ने पढ़ी होतीं तो यह निराधार बात न कहतीं।'

एक पुरानी घटना जो स्मृति पटल पर उभर रही है उसका उल्लेख करने का लोभ संवरण नहीं कर पा रहा हूँ। लगभग ५० वर्ष पूर्व प्रयाग कुम्भ के शुभावसर पर जब पूज्य श्री करपात्री जी पैदल विचरते थे, हाथ पर खाते थे, वृक्षों के तले रहते थे तो हम एक सुप्रसिद्ध सन्त पूज्य श्री योगानन्द जी महाराज एवं उनके अंग्रेज शिष्य मिस्टर राइट साहिब को लेकर उन्हें पूज्य स्वामी करपात्री जी का दर्शन कराने ले गये थे। पूज्य योगानन्द जी अमेरिका में रहते थे, जिनके लाखों अंग्रेज (विदेशी) शिष्य थे वह अपने अनेकों शिष्यों के साथ कुम्भ पर पधारे थे। वे लोग भी महाराज के दर्शन कर बड़े प्रभावित हुये। अमेरिका जाने पर एक हजार पृष्ठ के अंग्रेजी ग्रंथ में उन्होंने पूज्य करपात्री जी का भी बड़े सुन्दर शब्दों में वर्णन किया है। वह ग्रन्थ हिन्दी में भी छपा है। उक्त ग्रंथ में प्रकाशित मिस्टर राइट की डायरी के कुछ शब्द पाठकों की जानकारी हेतु यहाँ उद्धृत करके लेख को विराम देते हैं:—मिस्टर राइट लिखते हैं कि—

"...... हम लोग कार से उतर कर पैदल चले, रास्ते में साधुओं की धूनी का घना धुआँ

भरा हुआ था, बालू में पैर धंस जाते थे। अन्ततः हम लोग मिट्टी और घास-फूस से बने छोटे-छोटे कुटीरों के समूह के बीच पहुंचकर एक कुटीर के सामने खड़े हो गये। प्रवेश द्वार बिल्कुल छोटा और किवाड़हीन था। ......यह था अपनी असाधारण विद्वत्ता के लिए प्रसिद्ध युवक साधु करपात्री जी का आश्रम। वहां पर वे धान के पीले चमकीले पुआल के बिछौने पर पालथी मारे (धरती पर) बैठे थे, उनके शरीर पर जो एक मात्र वस्त्र था—और सम्भवतः एक मात्र सम्पत्ति भी वह था एक गैरिक वस्त्रखण्ड जिसे उन्होंने कन्धों पर ओढ़ रखा था। ......हम लोगों ने किसी चर-चौपायें के समान रेंगकर उस कुटी में प्रवेश किया और उनके चरणों में प्रमाण किया। उस समय उनके मुखमण्डल पर दिव्य हंसी खेल रही थी, प्रवेश द्वार पर एक लालटेन टिमटिमा रही थी, जिसके हिलते ही प्रकाश में कुटिया की दीवारों पर भिन्न भिन्न प्रकार की छायाएं भी नाच रही थीं। साधु महाराज के नेत्र प्रसन्नता से चमक रहे थे। उनकी श्वेत दन्तपंक्ति की शोभा देखते ही बनती थी, यद्यपि मैं उनकी हिन्दी समझ नहीं पाता था, तथापि उनके मुख के भाव सहज ही समझ में आ जाते थे। वे उत्साह, प्रेम और आध्यात्मिक गरिमा से ओत-प्रोत थे, उनकी महानता के विषय में किसी को सन्देह नहीं हो सकता।'

'......भौतिक विश्व के प्रति अनासक्त व्यक्ति के सुखी जीवन की कल्पना कीजिये। वस्त्र समस्या से मुक्त, भोजन के लिये विविध व्यंजनों की इच्छा से मुक्त, एक एक दिन के अन्तर से रांधा गया भोजन ग्रहण करने में नियम का पालक, हाथ में भिक्षापात्र तक नहीं, धन की झंझट नहीं, रुपये पैसे के स्पर्श से दूर, परिग्रह वृत्ति से दूर, ईश्वर में सदैव प्रगाढ़ विश्वास, यातायात की चिन्ता नहीं—वे किसी वाहन पर नहीं चढ़ते, किन्तु निरन्तर पवित्र नदियों के किनारे किनारे पर्यटन करते रहते हैं, आसक्ति से दूर रहने के लिये वे किसी भी स्थान पर एक सप्ताह से अधिक नहीं रुकते। ......और कैसा विनम्र भाव है उनका वेदों के असाधारण ज्ञाता। उनके चरण तलों में बैठते समय मेरे मन में एक भव्यता की भावना जागृत हो उठी। ऐसा प्रतीत हुआ कि उनका यह दर्शन वास्तविक और प्राचीन भारत को देखने की मेरी इच्छा का प्रत्युत्तर है, क्योंकि वे आध्यात्मिक महापुरुषों की इस भूमि के सच्चे प्रतिनिधि हैं......।'' एक विदेशी पर्यटक मिस्टर राइट की २५ जनवरी १९३६ की डायरी का यह भावनात्मक ऐतिहासिक पन्ना उन प्रकाण्ड विद्वान् पूज्य स्वामी करपात्री महाराज के अप्रतिम स्वरूप की ५० वर्ष पूर्व की अलौकिक झांकी प्रस्तुत करता है—स्वामी करपात्री जी के जीवन का क्षण क्षण, देश, धर्म और गौ की सेवा में व्यतीत हुआ—उनके अनन्त चरित्रों का वर्णन अशक्य है कुछ अस्फुट से वाक्यों को एकत्र भर कर दिया है इन्हीं वाक्यों की शब्दाञ्जलि उन अनन्त, शब्द ब्रह्म में प्रविलीन उन ब्रह्मस्वरूप स्वामी करपात्री को समर्पित है।

□ □

धर्म सम्राट् स्वामी श्री करपात्री महाराज की ब्रह्मलीनता से

आस्तिक गोरक्षक समाज की अपूरणीय क्षति

—डा० रघुनाथ शर्म्मा, एम० ए०, पी-एच० डी०
प्राध्यापक—संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

अनन्त कोटि ब्रह्माण्डाधिष्ठान परात्पर परब्रह्म आनन्दकन्द परमानन्दघन पूर्णतम पुरुषोत्तम श्रीमन्नारायण ही अपनी वेद शास्त्रानुमोदित धर्मसेतु की रक्षा के लिए 'सम्भवामि युगे युगे' के न्याय से अनन्तानन्त श्रीविग्रहों में आविर्भूत होता है। उस अनन्त के विस्तार का अन्त नहीं, अतएव विभूतिमत् सत्व अथवा श्रीमदूर्जित तत्व उसके अपने ही दिव्यांश का आविर्भाव अथवा स्वात्मलीला विलास ही है। वह ही था धर्म सम्राट् अनन्त श्री सम्वलित स्वामी श्री करपात्री महाराज के श्रीविग्रह में मूर्तिमान।

'शास्त्रयोनि' अथवा शास्त्रैक समधिगम्य सच्चिदानन्द पूर्णतम अक्षरतत्व वेदादि सच्छास्त्रानुमोदित सत्य सनातन-धर्म, भारतीय संस्कृति, दर्शन, यज्ञपरम्परा एवं राजतन्त्र की रक्षा के लिए प्रायः ७६ वर्ष पूर्व विक्रम सम्वत् १९६४ के श्रावणमास के शुक्लपक्ष की द्वितीया रविवार (ईस्वी सन् १९०७) को श्री पं० रामनिधि ओझा जी के निकेताङ्गण में प्रकट हुआ वह ही तेजपुञ्ज अपने दिव्य प्रकाश से दिशाओं एवं विदिशाओं को आलोकित करता हुआ अपनी लोक लीला का संवरण करके माघ शुक्ल चतुर्दशी विक्रम सम्वत् २०३८ रविवार, तदनुसार फरवरी ७, १९८२ को श्री विश्वनाथधाम वाराणसी में अपने दिव्यधाम में लीन हो गया। वह लोकविश्रुत धर्म सम्राट् अथवा अनभिषिक्त अभिनव शंकराचार्य अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिये हरनारायण से श्री करपात्री स्वामी हरिहरानन्द सरस्वती होता हुआ सम्प्रति हरि, हर, नारायण आनन्द, परमानन्द अथवा ब्रह्मानन्द हो गया। जिस भागवदुद्देश्य अर्थात् धर्म संस्थापनार्थाय वह तेजपुञ्ज इस धराधाम पर अवतीर्ण हुआ उसमें उसे अद्भुत साफल्य की प्राप्ति हुई। वह आजीवन श्रुति, युक्ति एवं अनुभव के आधार पर शास्त्रीय सनातन धर्म, हिन्दुत्व एवं गोमाता के विरोधियों के श्रुत्याभासों, युक्त्याभासों एवं अनुभवाभासों का अपनी सशक्त वाणी एवं लौह-लेखनी से खण्डन करते रहे। वह सनातन जगत् के प्राण थे तथा वह ही थे लौह-महापुरुष।

जगद्गुरु शंकराचार्य ज्योतिष्पीठाधीश्वर स्वामी श्रीकृष्णबोधाश्रम जी महाराज के ब्रह्मीभाव काल से धार्मिक जगत् की जो सशक्त कड़ियाँ टूटनी आरम्भ हुई उनमें विद्यावागीश पं० दीनानाथ सारस्वत, शास्त्रार्थ महारथी पं० माधवाचार्य, पूज्यपाद स्वामी नरोत्तमाश्रम जी महाराज, (मस्ती स्वामी जी), महात्मा गुरुचरणदास जी, स्वामी परमानन्द सरस्वती तथा पिलखुवा के सन्त भक्त

शरणदास जी थे। उन कड़ियों का महान कड़ा स्वामी श्री करपात्री जी महाराज के ब्रह्मीभूत होने से टूटा। अब तो स्तम्भ ही गिर गया। सनातन जगत् प्रायः अनाथ हो गया।

शास्त्रीय पक्ष का विरोधी प्राच्य हो अथवा पाश्चात्य, कार्लमार्क्स, स्वामी दयानन्द सरस्वती, पं० मदन मोहन मालवीय, महात्मा गान्धी, स्वामी रामदेव, मध्वाचार्य स्वामी विद्यामान्य तीर्थ, श्री माधव सदाशिव गोलवल्कर, श्री राहुल सान्कृत्यायन या फिर सर्वथा सिद्धान्त शून्य आचार्य रजनीश आदि श्री स्वामी करपात्री जी महाराज की अकाट्य तर्क शक्ति एवं लेखनी से परास्त हुये। विदेश यात्रा के अशास्त्रीय पक्ष का समर्थन करने वाले अपने निकटतम सहयोगी शास्त्रार्थ महारथी श्री पं० माधवाचार्य शास्त्री जी का खण्डन भी श्री चरणों ने अपनी लौह-लेखनी से किया। श्री चरणों की युक्तियाँ एवं तर्क सदैव अकाट्य रहे। स्मरण रहे कि स्वामी जी महाराज की शास्त्रार्थ एवं खण्डन प्रक्रिया सदैव सिद्धान्त परक ही रहती थी, व्यक्तिगत नहीं। अतएव प्रायः यह सभी महानुभाव आजीवन श्री चरणों के मुक्तकण्ठ प्रशंसक रहे।

ऋतम्भरा प्रज्ञा के धनी स्वामी श्री करपात्री जी महाराज आजीवन धर्म, संस्कृति, संस्कृत एवं हिन्दी भाषा के प्रचार में संलग्न रहे। उनके लिये धर्मरक्षा एवं गोरक्षा प्रायः पर्यायवाची शब्द थे। उनका व्यक्तित्व शास्त्र ग्रंथों में प्राप्त ऋषि तत्व का मूर्तिमान स्वरूप था। इस मन्वन्तर के चौबीसवें त्रेता युग में अवतरित मर्यादा पुरुषोत्तम कौसल्य-शुक्ति-मौक्तिक भगवान् श्री रामचन्द्र 'विग्रहवान् धर्म' कहाए तो यदि यह कहूँ कि इस ही मन्वन्तर के अठ्ठाईसवें कलियुग के इस प्रथम चरण में अवतीर्ण श्री स्वामी करपात्री जी महाराज भी मूर्तिमान धर्म अथवा रूपान्तर परिणत मर्यादा पुरुषोत्तम ही थे तो अत्युक्ति नहीं होगी। उनके श्रीविग्रह में आद्य जगद्गुरु श्री शंकराचार्य के ज्ञान, महाप्रभु चैतन्यदेव की भक्ति एवं व्यास-वसिष्ठ, मनु-नारद-शुक्र-बृहस्पति, कामन्दक आदि के प्रशासन-तन्त्र की त्रिवेणी का साक्षात्कार होता था। प्राणियों में सद्भावना एवं विश्व कल्याण के तो वह प्रमुख सूत्रधार थे। वेदादि सच्छास्त्रों का वह अगाध पाण्डित्य, लेखनी एवं वाणी का अद्भुत ऐश्वर्य एवं ओज-प्रसाद-माधुर्यादि अब कहाँ प्राप्त होगा?

इस प्रकार के अगणित गुण-गण-गरिमा सम्पन्न आदर्श युग-महापुरुष का आकस्मिक ब्रह्मीभूत हो जाना मात्र धार्मिक जगत् को ही नहीं अपितु सम्पूर्ण राष्ट्र एवं विश्व की अपूरणीय क्षति है। अपने जीवन काल में श्री चरणों ने सनातन धर्म पर होने वाले सभी प्रहारों को अपने ऊपर लिया, शष आस्तिक जगत सर्वथा निश्चिन्त रहा। यदि वह निश्चिन्तता अथवा औदासीन्य अब भी बना रहा तो लुटेरे घर लूट ले जावेंगे। अवशिष्ट महापुरुषों को सचेत ही नहीं अपितु सचेष्ट रहना भी आवश्यक है। इस सम्बन्ध में गम्भीर चिन्तन की घड़ी अब सिर पर आ पड़ी है।

श्री स्वामी करपात्री जी महाराज की वाणी में प्राणशक्ति एवं सार्वकालिक शाश्वत मूल्य निहित थे। प्रायः दो वर्ष पूर्व श्री वृन्दावनधाम स्थित धर्म संघ महाविद्यालय रमणरेती में श्री चरण होली पर्व के दिनों निवास कर रहे थे। प्रायः प्रत्येक वर्ष इन दिनों महाराज श्री इस पावनधाम एवं

स्थल में निवास श्रीमद् भागवदीय रासरहस्य पर प्रवचन किया करते थे। महाराज श्री के मुख से श्रीमद्भागवत्प्रसंग श्रवण से ऐसा अनुभव होता था मानो साक्षात्गोपेश्वर महादेव ही भगवद्भक्ति-रसाप्लावित हो भगवद् गुणानुवाद कर रहे हों। हाँ तो दो वर्ष पूर्व के उस निवास के अवसर पर पूज्यपाद श्री स्वामी करपात्री जी महाराज के करकमलों से ब्रह्मलीन जगद्गुरु शंकराचार्य ज्योतिष्पीठाधीश्वर, स्वामी श्री कृष्णबोधाश्रम स्मृति समिति की विधिवत् स्थापना हुई। स्मृति समिति की स्थापना से पूर्व वहाँ स्थानीय रामराज्य परिषद् की बैठक में श्री चरणों के समक्ष परिषद् को समस्याओं पर विचार विमर्श चल रहा था। प्रायः सभी वक्ताओं का मुख्यबल कार्य-कर्त्ताओं की न्यूनता और औदासीन्य पर था। स्मृति-समिति एवं रामराज्य-परिषद् के सम्बन्ध से यह शरीर वहाँ उस समय उपस्थित था। कार्यवाही के अन्त में श्री चरणों ने अपने उद्बोधक प्रवचन में कहा, "आप अन्य लोगों की सहायता की बात क्यों करते हैं? यदि आपको अपने उद्देश्य की साधुता पर विश्वास है तो अकेले ही चल पड़ो। जिसको आना होगा स्वयं ही आ जावेगा। कोई आवे और आपकी सहायता करे तो ही आप चल पावें तो यह तो आपकी ही उदासीनता एवं अकर्मण्यता को स्पष्ट करेगा। आपको सदैव ऐसी स्थिति के लिए कटिबद्ध रहना चाहिये जिसमें अपने सदुद्देश्य की प्राप्ति के लिये आपको अकेले ही चलना पड़े। सन्मार्ग में प्रवृत्तजीव की सहायता भगवान् स्वयं करते हैं—'इन्द्र इच्चरतः सखा।'" श्री चरणों के श्रीमुख से निर्गत यह वाक्य वेदशास्त्रानुमोदित सत्य सनातन धर्म, वर्णाश्रम व्यवस्था एवं सम्पूर्ण गोवंश की रक्षा में प्रवृत्त साधुजनों के मार्ग को सदैव आलोकित करेंगे। उन्हें इस पावन वाणी में सदैव सम्बल प्राप्त होगा।

विदेशी शासन के कट्टर विरोधी श्री स्वामी करपात्री जी महाराज यद्यपि भारत की अखण्डता के प्रवल पक्षपाती थे तथापि कभी भी इस देश को अपनी मातृ-पितृ भूमि मानने वाले मुसलमानों के विरोधी नहीं थे। भारत विभाजन के पश्चात् श्री चरण अपने सार्वजनिक भाषणों में कहा करते थे, "एक बेदीन, बेईमान तथा धर्मशास्त्रानुमोदित धर्म पर विश्वास न रखने वाले एक हिन्दू की अपेक्षा एक दीनदार, ईमानदार मुसलमान को जिसे अपने कुरान हदीस शरीफ रोजा नमाजादि पर विश्वास है हजार गुना अच्छा है। इस प्रकार के मुसलमान से नहीं अपितु उस प्रकार के हिन्दू से देश को खतरा हो सकता है। आवश्यकता इस बात की है कि एक हिन्दू सच्चा हिन्दू तथा एक मुसलमान सच्चा मुसलमान रहे।" श्री स्वामी जी महाराज हिन्दु-मुस्लिम सद्भाव के पक्षपाती थे। छल-बल से किये जाने वाले धर्म-परिवर्तनों के वह सदा विरोधी थे।

श्री स्वामी करपात्री जी महाराज शास्त्रीय-जन्मना वर्णाश्रम मर्यादा के पक्षपाती थे तथा हरिजनों को हिन्दू समाज का अभिन्न अङ्ग मानते थे। हरिजनों के प्रति की जाने वाली अहिंसा, द्वेष भावना एवं अत्याचारों के प्रबल विरोधी थे। हरिजनों के देवदर्शन के सम्बन्ध में श्री स्वामी जी कहा करते थे, "सार्वजनिक मन्दिरों में ऐसे नियम बनने चाहिये, जिनके अन्तर्गत जहाँ से शंकराचार्य, काशी नरेश और हम लोग दर्शन करते हैं वहीं से हरिजन भी दर्शन कर सकें।" यह नियम स्वामी जी

द्वारा निर्मित मन्दिरों में प्रचलित था। हरिजनों को भी अनावश्यक राजनीति से प्रेरित होकर धर्म द्वेष का परिहार करना चाहिये।

श्री स्वामी करपात्री जी महाराज वेदादि सच्छास्त्रों, रामायण, महाभारत एवं पुराणों के विश्व कोष थे। इस आर्ष वाङ्मय का विरोधी भले ही देशी हो अथवा विदेशी वह श्री चरणों के तर्कों के समक्ष नतमस्तक हुआ। उनकी लौह-लेखनी से प्रसूत ५० से अधिक सद्ग्रंथ श्री चरणों के लोकोत्तर वैदुष्य एवं भारतीय संस्कृति के प्रति उनकी उदात्त भावनाओं के ज्वलन्त उदाहरण हैं। धर्म के क्षेत्र में 'वेदार्थ-पारिजात', दर्शन के क्षेत्र में 'शाङ्कर-भाष्य-शंका-मीमांसा', इतिहास के क्षेत्र में 'रामायण मीमांसा', सामाजिक क्षेत्र में 'विचार पीयूष', भक्ति के क्षेत्र में 'भक्ति रसार्णव' तथा राजनीति के क्षेत्र में 'मार्क्सवाद और रामराज्य' उनके प्रतिनिधि ग्रंथ हैं।

सुनते थे ब्रह्मीभूत होने से प्रायः डेढ़ वर्ष पूर्व से स्वामी जी महाराज का स्वास्थ्य निर्णायक स्थिति में नहीं था। उन दिनों ऐसा कहा जाता था कि श्री चरणों की स्थिति ऐसी थी जिसमें उन्होंने अपने पराये को पहचानना भी छोड़ दिया था। वह भले-बुरे का अन्तर किये बिना सबको अच्छा ही कहते थे। मेरे विचार से ब्रह्मविदवरिष्ठ तत्वीभूत महापुरुष श्री स्वामी करपात्री जी महाराज के सम्बन्ध में इस प्रकार का प्रलाप अनुचित है। लोक लीला संवरण की भावना से प्रेरित होकर श्री स्वामी जी महाराज ने काशीवास का निर्णय लिया तथा अपने मूलभूत तत्व अद्वैत में प्रवेश कर गये। उस स्थिति में 'अकार्पण्य' एवं 'अजाति' ही है—'यथा न जायते किञ्चिज्जायमानं समन्ततः' —अथवा 'तस्मादेवं विदित्वैनमद्वैते योजयेत्स्मृतिम्—अद्वैतं समनुप्राप्य जड़वल्लोकमाचरेत्।' अथवा—'तत्वीभूतस्तदारामस्तत्त्वानप्रच्युतो भवेत्।' श्री चरण विषयक यह प्रसाद तत्वज्ञों का परितोषक है। अतएव उस अवस्था में निर्णयादि लेने से विमुखता ही थी, असमर्थता नहीं। उस काल में भी आवश्यकता पड़ने पर श्री चरणों ने ऐतिहासिक निर्णय लिये, यथा धर्म-संघ शिक्षा-मण्डल की मार्गशीर्ष कृष्ण सं० २०३८ तदनुसार नवम्बर १६, १९८१ की बैठक के निर्णय।

सम्भवतः गोलोक में एकत्रित इस काल के कतिपय गोभक्तों, ब्रह्मलीन जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी श्री कृष्णबोधाश्रम जी महाराज, श्री जयदयाल गोयनका, भाई हनुमान प्रसाद पोद्दार, पं० दीनानाथ जी सारस्वत, भारत गोसेवक समाज के प्राण लाला हरदेव सहाय, शास्त्रार्थ महारथी पं० श्री माध्वाचार्य जी शास्त्री, पूज्यपाद स्वामी श्री नरोत्तमाश्रम (मन्त्री स्वामी), स्वामी परमानन्द सरस्वती, गोभक्त भामाशाह लाला लछिमनदास अग्रवाल, पिलखुवा के सन्त भक्तरामशरणदास सुप्रसिद्ध सनातनी नेता श्री मदनगोपाल सिंहल मेरठ आदि अनेकों सन्तों ने वहाँ बैठक की होगी तथा की होगी गोरक्षा के गम्भीर प्रश्न की मीमांसा। इस विषय के सबल नेतृत्व के लिये उन महापुरुषों ने धर्म सम्राट् को वहाँ बुला लिया। यह सभी महापुरुष वहाँ गोलोक में संगठित प्रयास करेंगे तथा इस भू लोक में इस पुनीत कार्य में प्रवृत्त आचार्यों सन्तों एवं महापुरुषों को अपना सशक्त आशीर्वाद एवं शक्ति प्रेषित करेंगे। इस महा सम्बल को प्राप्त कर तथा इन महापुरुषों के उच्चादर्शों को ध्यान

में रख जो भी सत्प्रयास एवं बलिदान किये जावेंगे वह भगवत्कृपया विफल नहीं जावेंगे।

ब्रह्मीभूत अनन्त श्री स्वामी श्री करपात्री जी महाराज का श्री विग्रह अब इस लोक में नहीं रहा परन्तु उनका कृतित्व ग्रंथ महारत्न हम लोगों के बीच उनका वाङ्मय श्री विग्रह है। उनके यह सद्ग्रंथ जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में आस्तिकों का मार्ग निर्देशन करेंगे। वह युगस्रष्टा आदर्श महापुरुष थे। उनके ब्रह्मभाव प्राप्त करने से एक और युग की समाप्ति हो गयी।

इस प्रकार के विलक्षण प्रतिभा सम्पन्न महापुरुष का आकस्मिक ब्रह्मीभाव को प्राप्त हो जाना सारे राष्ट्र के लिए अपूर्व एवं अपूरणीय क्षति है। उनके अभाव में जगत्गुरु श्री शंकराचार्यों, धर्माचार्य, साधु-सन्त महापुरुषों का उत्तरदायित्व सहस्रगुणित हो गया है। श्री स्वामी करपात्री जी महाराज की समस्त शिष्य एवं भक्तमण्डली का परम कर्त्तव्य है कि पारस्परिक भेद-भाव एवं रागद्वेष का सर्वतोभावेन परित्याग करके उनके द्वारा निर्दिष्ट एवं उपदिष्ट सन्मार्ग का अनुसरण करते हुये वेदादि सच्छास्त्र प्रतिपादित सत्य सनातन धर्म, वर्णाश्रमव्यवस्था, गोवंशरक्षा तथा राष्ट्र रक्षा में इस प्रकार प्रवृत्त हों जिससे धर्म की जय, अधर्म का नाश, प्राणियों में सद्भावना, विश्व का कल्याण, गोमाता की जय एवं गोहत्या बन्दी हर हर महादेव की कृपा से अविलम्ब सिद्ध हों तथा धर्म निरपेक्ष शासनतन्त्र के स्थान पर धर्म सापेक्ष्य पक्षपातविहीन रामराज्य की विजय पताका सर्वत्र लहराए। उन्हीं के इन ईश्वरीय उद्देश्यों में सफलता की शक्ति वह 'भूत तत्व' परमेश्वर सबको प्रदान करें।

●●

'विधर्म, परधर्म से बचकर स्वधर्मपालन करते हुये भगवान की आराधना करने पर ही लौकिक, पारलौकिक उन्नति तथा अन्त में भगवान् की प्राप्ति होती है। इसी से अभीष्ट की सिद्धि होगी और संघटन का भी यह सीधा-सादा रास्ता है। आपके पड़ोसी मुसलमान बन्धु पांच-पांच बार नमाज पढ़कर-परमेश्वर की उपासना करते हैं, क्या आपको अपने शास्त्र, धर्म तथा अपनी उपासनाओं में वैसा प्रेम है? आप लोग टोला टोला मुहल्ला-मुहल्ला, ग्राम-ग्राम, नगर-नगर में धर्म संघ की शाखायें बनाएं, सत्सङ्ग, कीर्तन, कथा आदि का प्रबन्ध करें, इससे आपको बल मिलेगा, सुधार का अवकाश मिलेगा।''

—करपात्र स्वामी

"आध्यात्मिक विभूति करपात्री जी"

—सत्येन्द्र कुमार गुप्त, प्रधान सम्पादक दैनिक 'आज' (काशी संस्करण) वाराणसी

'काशी की आध्यात्मिक विभूति स्वामी करपात्री जी के तिरोधान से आध्यात्मिक तथा धार्मिक क्षेत्र की अपूरणीय क्षति हुयी है। आप पिछले महीनों में अत्यन्त अस्वस्थ थे किन्तु इधर धीरे धीरे स्वास्थ्य लाभ कर रहे थे। माघी पूर्णिमा के सन्धि काल पर आपका महाप्रस्थान विशेष दृष्टव्य है। आपका पूर्ण माम स्वामी हरिहरानन्द सरस्वती था। इसमें सन्देह नहीं कि आप सरस्वती के वरदपुत्र थे। आपने रामराज्य परिषद्, धर्म संघ, धर्म संघ शिक्षा मण्डल की स्थापना कर वैदिक धर्म के प्रसाद तथा आध्यात्मिक जागृति का महान कार्य किया था। काशी में आपने कुछ वर्ष पूर्व केदार घाट पर वेद शास्त्रानुसन्धान केन्द्र की स्थापना की थी। आप वैदिक विज्ञान और भागवत धर्म के महान पण्डित थे। देश में आध्यात्मिक और सांस्कृतिक जागरण के लिये आपने 'सन्मार्ग-दैनिक, पाक्षिक-'सिद्धान्त' तथा 'धर्म-चर्चा' नामक पत्र पत्रिकाओं का संस्थापन और प्रकाशन किया। गोरक्षा के आन्दोलन को भी आपने व्यापक रूप प्रदान किया था। धार्मिक साधना, अनुष्ठान और व्याख्यान प्रवचनों में व्यस्त रहने पर भी आपने अनेक गौरव ग्रन्थों का प्रणयन किया है। इसमें 'वेदार्थ-पारिजात', 'रामायण-मीमांसा', 'श्री विद्या-रत्नाकर', 'भक्ति-सुधा', 'मार्क्सवाद और रामराज्य', 'संघर्ष और शान्ति', 'पूंजीवाद, समाजवाद और रामराज्य, —विशेष रूप से उल्लेख्य हैं। आपके लेखन में जैसे अगाध पाण्डित्य का दर्शन होता है वैसा ही वैदुष्य आपके भागवत और मानस के आध्यात्मिक प्रवचनों में भी परिलक्षित होता था। देश के अनेक शंकराचार्य, सन्त महात्मा, विद्वान् आपके प्रवचनों तथा व्याख्यानों से मार्ग दर्शन प्राप्त करते थे। उत्तर प्रदेश के राज्यपाल ने काशी आकर सरकार की ओर से आपकी सारस्वत साधना का सम्मान किया था। आप आध्यात्मिक क्षेत्र की महान विभूति थे। धार्मिक तथा सांस्कृतिक उन्नयन, भारतीय वैदिक-परम्पराओं के संरक्षण एवं संवर्धन में आपका योगदान चिरस्मरणीय रहेगा। वैदिक शास्त्रानुसन्धान केन्द्र तथा धर्मसंघ शिक्षा मण्डल की आध्यात्मिक, सांस्कृतिक तथा शैक्षणिक प्रवृत्तियों को सजीव और सतत गतिशील रखना ही उनका सच्चा स्मारक तथा सच्ची श्रद्धाञ्जलि होगी।
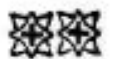
"शत शत प्रणाम"

—ईश्वर देव मिश्र सम्पादक 'दैनिक 'जनवार्ता' जनवार्ता प्रकाशन (प्रा० लि०) वाराणसी।

धर्म सम्राट् करपात्री जी महाराज के ब्रह्मीभूत होने की खबर से न केवल हिन्दू धर्मावलम्बियों को आघात लगा है अपितु अन्य धर्मों के वे अनुयायी भी मर्माहत हुए हैं जो दूसरे धर्म को आदर और सम्मान की दृष्टि से देखते हैं। स्वामी जी के निधन से भारतीय धर्म, दर्शन, वेदान्त, मीमांसा, पुराण, शास्त्र, संस्कृत-साहित्य आदि का अन्यतम विद्वान उठ गया। वे विद्या, ज्ञान, त्याग, तपस्या और अध्यात्म साधना की प्रतिमूर्ति थे। भारतीय दर्शन और संस्कृत साहित्य के अगाध विद्वान स्वामी कपपात्री जी ने अपने जीवन के पचास वर्ष हिन्दू धर्म शास्त्रों के गहन विवेचन और शास्त्र-सम्मत हिन्दू संस्कृति की रक्षा और उन्नयन में लगाये। उन्होंने धर्म की जय, अधर्म का नाश, प्राणियों में सद्भावना और विश्व के कल्याण की हमेशा हमेशा कोशिश थी। वे कट्टर पन्थी धर्मावलम्बियों से अलग मानव मात्र के कल्याण की भावना से देश के आध्यात्मिक और नैतिक उत्थान के लिए सदैव जूझते रहे। मूर्तिपूजा, अवतारवाद, वर्णव्यवस्था आदि के समर्थक होते हुए भी असहिष्णु नहीं थे। उन्होंने सनातन धर्म की ध्वजा को सर्वोच्च शिखर पर पहुँचाने की दृष्टि से आदि शंकराचार्य के अधूरे कार्य को और आगे बढ़ाने का लक्ष्य लेकर अखिल भारतवर्षीय धर्मसंघ की स्थापना की। संस्कृत और धर्मशास्त्रों के अध्ययन-अध्यापन को आगे बढ़ाने की दृष्टि से उन्होंने शिक्षा मण्डल के तत्वावधान में संस्कृत विद्यालयों की स्थापना की और इस दिशा में अपने धर्मानुयायियों को प्रेरित किया।

स्वतन्त्रता के बाद जब लोकतन्त्रीय शासन व्यवस्था कायम हुयी तो स्वामी जी ने धर्म नियन्त्रित राजनीति और अर्थनीति का सिद्धान्त प्रतिपादित किया और रामराज्य परिषद की स्थापना कर धर्म और राजनीति को समन्वित करने का प्रयास किया। चूंकि वे राजनीति के आदमी नहीं थे इसलिये इस कार्य में उन्हें विशेष सफलता नहीं मिली। हिन्दी, हिन्दू, संस्कृत, गौ और राष्ट्ररक्षा के लिये प्राणों की आहुति देने के वे पक्षधर थे। सदाचार को चरित्र का आधार मानने वाले इस महात्मा ने शिक्षा को भी धर्म सम्मत रखने पर बल दिया था। इन्होंने देश के विभिन्न भागों में शतमुख कोटि, लक्षचण्डी, अतिरुद्र, महाविष्णु, शतचण्डी आदि यज्ञ किये और बड़े-बड़े नास्तिकों को आस्तिक बनाया। इस महान त्यागी और तपस्वी महात्मा ने अपनी विद्वत्ता और वाग्मिता से समाज को हमेशा लोक कल्याण और धर्माचरण के लिये अनुप्राणित किया है। वीतराग महात्मा होते हुए भी इन्होंने लोक जीवन से अपना सम्पर्क बनाये रक्खा, क्योंकि वे लोक कल्याण चाहते थे।

स्वामी जी ने 'सन्मार्ग' दैनिक और 'सिद्धान्त' पत्रिका के माध्यम से आम आदमी के समक्ष आदर्शोन्मुख यथार्थ रखने का संकल्प लिया था उसमें भी वे काफी हद तक सफल हुए थे किन्तु कालान्तर में परिस्थितियों वश वह मिशन पूरा नहीं हो पाया और उन्हें अपने पत्रों के कई संस्करण

"श्री श्यामसुन्दर ब्रजेन्द्रनन्दन की कोटि-कोटि कन्दर्प-दलन पटीयसी मनोहारिणी छवि निहारने के लिये सब प्रपंच भूल जाय; व्याकुलता बढ़ती जाय; मन तड़फड़ाने लगे; अस्वास्थ्य हो जाय; धैर्य छूट जाय; तभी उसका महत्व है; तभी सफलता है। यदि कहीं यह सन्तोष कि धीरे-धीरे करते चलो; धैर्य रखो-तो फिर अनुचित है; यहां तो जितनी अधिक व्याकुलता; व्यग्रता; बेचैनी बढ़ेगी; उतनी ही अनुराग में उत्कृष्टता आयेगी। बस अधिकाधिक व्याकुलता होना ही उस मति का मूल्य है। पुत्र; धन; द्वारा; गेह; नेह के न मिलने पर अधैर्य; तो सभी को होना स्वाभाविक है परन्तु भगवदर्थ अधैर्य्य; व्याकुलता; अस्वास्थ्य का होना ऊँची बात है।"

बन्द करने पड़े। उन्होंने अपने समाचार पत्रों के माध्यम से विद्वानों और पत्रकारों को उचित सम्मान दिया और काशी में तो सन्मार्ग के जन्म के साथ ही सम्पादकीय विभाग के लोगों के लिये सम्मान-जनक पारिश्रमिक मिलना प्रारम्भ हुआ। स्वामी जी की शव यात्रा में काशी एवं देश के विभिन्न भागों से जितना बड़ा जनसमूह उमड़ आया था वह उनकी लोकप्रियता का सबूत था। उनके ब्रह्मीभूत होने के सम्बन्ध में जो समाचार मिला है वह इस बात का संकेतक है कि उन्होंने अपनी इच्छानुसार शरीर त्याग किया है। नियमित रूप से पूजा-पाठ करके एक शुभ मुहूर्त में उनका ब्रह्मलीन होना उनके जैसे योगियों, त्यागियों, तपस्वियों के ही वश की बात है। धर्मप्राण सनातनी जनता के लिये स्वामी जी का निधन वज्रपात के समान है। फिर भी उनके करोड़ों भक्त यह मानकर कि जिसे इस संसार में आना है उसे जाना भी है, इस आघात को स्वीकार करेंगे। स्वामी जी को सही श्रद्धाञ्जलि यही होगी कि सम्पूर्ण मानव समाज जीवन में नैतिक मूल्यों को महत्व दे और मानवता के कल्याण के लिये कार्य करें। हम इस महामानव के श्री चरणों में अपना शत शत प्रणाम अर्पित करते हैं।'

□□

श्री चरणों में शत शत प्रणाम

—भगवान दास अरोड़ा, सम्पादक दैनिक 'गाण्डीव' वाराणसी।

हिन्दुत्व रक्षक शिरोमणि श्री स्वामी करपात्री जी महाराज के स्वर्ग गमन का समाचार सुन कर कौन हिन्दू होगा जिसे आघात न पहुँचा होगा। हिन्दू धर्म, संस्कृति और सभ्यता की रक्षा में महाराज श्री ने अपना सारा जीवन लगा दिया। धार्मिक जगत में उन्हें अद्वितीय स्थान प्राप्त था, धर्म क्षेत्र में जहां कहीं भी कोई विवाद उठ खड़ा होता, श्री स्वामी जी की व्यवस्था उसमें निर्णायक मानी जाती थी। यदि ऐसा कहा जाय कि महाराज जी आदि शंकराचार्य के ही अवतार थे तो गलत न होगा। भगवान शंकराचार्य की ही भाँति करपात्री जी महाराज ने भी तीन तीन शंकराचार्यों को पीठासीन कर उस परम्परा को अक्षुण्ण बनाये रक्खा।

विद्वत्ता में वर्तमान युग में उनका कोई सानी नहीं था। किसी को उनके विचारों से सहमति हो या न हो, उनके अकाट्य तर्कों के सामने तो हर व्यक्ति नतमस्तक हो जाता था।

गोरक्षा हेतु स्वामी जी महाराज ने अनेक बार देशव्यापी आन्दोलन चलाये तथा हिन्दूशास्त्री हिन्दू कोड बिल के विरुद्ध भी गहरा संघर्ष किया जो हिन्दुत्व के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में उल्लिखित होगा।

हिन्दी, हिन्दू, हिन्दुस्तान के करपात्री जी महाराज अनन्य समर्थक और पोषक थे। इसके लिये उन्होंने अनेक सारगर्भित ग्रन्थ लिखे तथा 'सन्मार्ग', 'धर्म-चर्चा' और 'सिद्धान्त' नामक अनेक पत्र-पत्रिकाओं का वाराणसी और कलकत्ता से प्रकाशन किया जो आज भी जारी है।

हिन्दू धर्म का जो स्वरूप उनके मन में था उस पर कभी उन्होंने समझौता नहीं किया। यही कारण था कि काशी विश्वनाथ मन्दिर में हरिजन प्रवेश होने पर उन्होंने उस मन्दिर का बहिष्कार कर अलग से अपने 'नये विश्वनाथ मन्दिर' की स्थापना कर ली और फिर कभी काशी विश्वनाथ मन्दिर में दर्शन-पूजन करने नहीं गये।

हिन्दू धर्म की उस महान विभूति को खोकर आज हिन्दू अपने को अनाथ समझ रहा है। उनके तिरोधान से हिन्दुत्व की जो महान क्षति हुई है, वह कभी पूरी न की जा सकेगी।

धर्म की जय हो, अधर्म का नाश हो, प्राणियों में सद्‌भावना हो, विश्व का कल्याण हो—— महाराज श्री के यह जयघोष इतने प्रसिद्ध हुए कि यह जन-जन के घोष बन गये और सच कहा जाय तो इन चार जयघोषों के माध्यम से महाराज श्री ने हिन्दू धर्म का जो सन्देश संसार को दिया, रहती दुनिया तक वह मानवमात्र के श्रोतों को पवित्र करता हुआ भारत के धर्म संस्कृति और सभ्यता की श्रेष्ठता की अमिट छाप विश्व भर में मुखरित करते रहेंगे।

हरिजनों के मन्दिर प्रवेश के प्रश्न पर तथा हिन्दुत्व की परिभाषा पर महाराज श्री की मान्यताओं से सहमत न होते हुए भी श्री चरणों के प्रति हमारे मन में अपार श्रद्धा और सम्मान था और सदैव रहेगा। उनके स्वर्गगमन पर आज हम अपनी ओर से 'गाण्डीव' के लाखों पाठकों की ओर से तथा हिन्दू मात्र की ओर से उनके श्री चरणों में शत-शत प्रणाम करते हैं।

□□
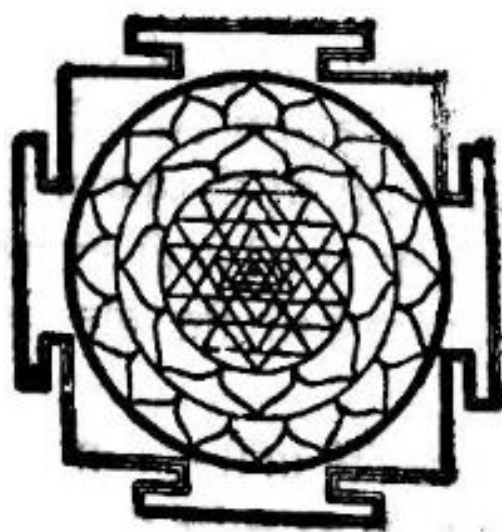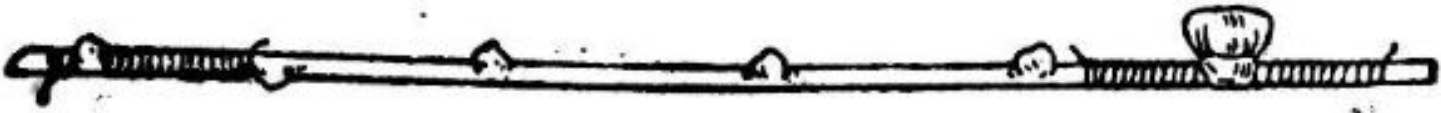
'जय करपात्र नमामि नमामी'

—आनन्द बहादुरसिंह, सम्पादक—सन्मार्ग दैनिक, वाराणसी।

हम सब धन्य हैं क्योंकि हम लोगों ने अपने इन्हीं नेत्रों से ब्रह्म स्वरूप अनन्त श्री विभूषित धर्म सम्राट् पूज्य स्वामी श्री करपात्री जी महाराज का दर्शन किया है। कानों से उनकी अमृतमयी वाणी का पान किया है। हाथों से उनके मंगलमय चरणों का स्पर्श किया है। महाराज श्री ने भारतीय जनता का कितना उपकार किया इसकी गणना असम्भव है। महाराज श्री जिस समय नाम रूप लीला धाम की महत्ता प्रतिपादित करते उस समय वे कहा करते थे कि मठावन सान्निध्य की सभी वस्तुएं भगवान हैं। नाम भी भगवान, लीला भी भगवान, रूप भी भगवान तथा धाम भी भगवान। महाराज श्री की ये चारों वस्तुएं वर्तमान हैं। उनका नाम उनका रूप, उनकी लीला तथा उनका धाम सब तो दृष्टिगोचर है फिर वियोग किस बात का ? आवश्यकता है महाराज श्री के नाम के चिन्तन की, उनके भव्य रूप के ध्यान की, उनकी दिव्य लीलाओं के स्मरण की तथा उनके दिव्य धाम (करपात्र धाम) के दर्शन की। इन चारों के सेवन से महाराज श्री का सान्निध्य हमें सदैव प्राप्त होगा जिससे हमारा लोक भी बनेगा और परलोक भी। इससे स्वयं का तो लाभ होगा ही साथ में समाज का भी लाभ होगा। महाराज श्री एक ओर बहुत ही अच्छे वक्ता थे तो दूसरी ओर उच्चकोटि के लेखक भी थे। एक ओर उच्च-कोटि कर्मकाण्डी थे तो दूसरी ओर योगी एवं दार्शनिक भी थे, भारतीय जीवन पर उनकी बहुत गहरी छाप है। राज्याश्रय उन्होंने कभी नहीं लिया बल्कि सदैव शासन के कोपभाजन रहे। कई बार स्वतन्त्र भारत की सरकार ने उन्हें जेल भेजा। पूज्य चरण को यदि राज्याश्रय प्राप्त होता तो अब देश में रामराज्य की छटा छा जाती। सारा कार्य उसी ढंग पर चलता।

बयरु न कर काहू सन कोई। रामप्रताप विषमता खोई॥

इसी दृष्टि से उन्होंने रामराज्य परिषद की स्थापना की थी। रामराज्य का एक तात्पर्य प्रत्येक वस्तु का भारतीयकरण भी है। आज देश में जितने भी कानून हैं वे सब अंग्रेजों के बनाये हुये हैं जिसका परिणाम यह है कि सारा कार्य ठप है। मुस्लिम देशों में धीरे-धीरे इस्लामी कानून लागू किया जा रहा है और उसका परिणाम वहाँ की जनता के लिए अच्छा ही हो रहा है। हमें भी अपने कानूनों का धर्मशास्त्रीकरण करना चाहिये तभी देश में नैतिकता की स्थापना होगी। आज नहीं कल देश को इस रास्ते पर आना ही पड़ेगा। महाराज श्री के विचारों का मूल्यांकन आज भले ही न हो पर वह आगे जाकर होगा। उनके राजनीतिक विचार 'विचार पीयूष' 'रामराज्य बनाम मार्क्सवाद' आदि ग्रंथों में संग्रहीत हैं। रजनीश के पूंजीवादी एवं स्वच्छन्दतावादी विचारों का महाराज श्री ने ही खन्डन किया। रामराज्यवादी समाज की संरचना की दिशा में अग्रसर होने के निमित्त हमें महाराज श्री के विचारों का ही आश्रय ग्रहण करना पड़ेगा।

एक ओर देश स्वतन्त्रता प्राप्त करने की तैयारी में लगा था वहीं दूसरी ओर पूज्य स्वामी

जी धार्मिक पुनर्जागरण का कार्य कर रहे थे। द्वापरीय यज्ञों का अनुष्ठान करके महाराज श्री ने जो शंख ध्वनि की उससे पूरा देश ही गुंजित हो उठा। उस समय जनता में एक ही ललक थी कि 'देश स्वतन्त्र हो।' इस ललक के कारण जनता धार्मिक आयोजनों से बहुत दूर हो गयी थी, पर महाराज श्री के प्रयास से पूरे देश में संकीर्तन कथा एवं यज्ञों का आयोजन प्रारम्भ हुआ। स्वतन्त्रता के पूर्व बहुत ही थोड़े स्थानों पर कथा होती थी पर आज मुहल्ले-मुहल्ले में सत्संग, कीर्तन और कथा का क्रम चल रहा है। यह सब उन्हीं की देन है।

जिस समय देश का विभाजन हुआ उस समय सभी लोग मौन थे, अकेले स्वामी जी ने अखण्ड भारत का नारा बुलन्द किया और गवर्नर-जनरल की कोठी पर विराट प्रदर्शन किया। इसके बाद गोहत्या बन्दी का आन्दोलन छेड़ा, गोहत्या बन्द हो, गो-माता की जय हो का नारा महाराज श्री अन्त तक लगवाते रहे। महाराज श्री के आन्दोलन का ही यह प्रताप था कि आज दो राज्यों को छोड़ कर शेष राज्यों में गो-हत्या बन्द है। विनोबा भी इधर इस कार्य में लगे थे पर जब इन्दिरा जी का उनसे सामना हुआ तो मौन हो गये। संविधान बनने के बाद हिन्दू कोड बिल आया, यदि वह अपने रूप में स्वीकार कर लिया जाता तो आज हिन्दू पूर्णरूप से विघटित हो गये होते। महाराज श्री ने हिन्दू कोडबिल को उस रूप में पारित नहीं होने दिया। रामराज्य परिषद की स्थापना के पश्चात १९५२ के चुनाव में सशक्त विरोधी दल के रूप में दल का उदय हुआ और मध्यप्रदेश एवं राजस्थान में उसकी मजबूत स्थिति प्रकट हुयी। आज देश में सबसे पुराना दल रामराज्य परिषद ही है जिसका विघटन नहीं हो सका अन्यथा सभी पुराने दल समाप्त हो गये।

इधर महाराज श्री ने वेदों पर कार्य प्रारम्भ किया था जिसका भूमिकामात्र (२२०० पृष्ठों का) प्रकाशित भी हो चुका है।[1] यजुर्वेद भाष्य के प्रकाशन की तैयारी हो रही है। वेद पर सनातनी दृष्टिकोण से वर्तमान में कोई काम नहीं हुआ था। महाराज श्री ने इस कमी को दूर कर दिया। भूमिकामात्र के अध्ययन से दृष्टिकोण तो स्पष्ट हो ही जाता है। श्री भागवत प्रवचन प्रेस में है जो शीघ्र ही जनता को सुलभ होगा।[2] महाराज श्री जैसा भागवती अब देखने को न मिलेगा। अन्त में—

'जय करपात्र नमामि नमामी' ●●

१. अब प्रकाशित हो चुका है।

२. भागवत-सुधा भी अब प्रकाशित हो चुका है।